अभिनव क्षितिज की खोज

शिक्षक-शिक्षा के नये आयाम और सम्भावनाएँ

राष्ट्रस्तरीय संगोष्ठी

२१–२३ सितम्बर, १९९२

मानविकी और सामाजिक विज्ञान विभाग

(राजकीय केन्द्रीय अध्यापन विज्ञान संस्थान)

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, उत्तर प्रदेश

इलाहाबाद

प्रकाशक :

प्राचार्य—मानविकी और सामाजिक विज्ञान विभाग
(राजकीय केन्द्रीय अध्यापन विज्ञान संस्थान)
इलाहाबाद

(c) राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, उत्तर प्रदेश

LIBRARY & DOCUMENTATION CENTRE
National Institute of Educational
Planning and Administration.
17-B, Sri Aurobindo Marg,
New Delhi-110016 D-7712
DOC, No .....
Date...6..... 01-09-93

प्रथम संस्करण : 500 प्रतियाँ

मुद्रक :
शिव शक्ति मुद्रणालय
473, बक्शी खुर्द, दारागंज,
इलाहाबाद

● प्रेरणा :

श्री हरि प्रसाद पाण्डेय
निदेशक
राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
उत्तर प्रदेश, लखनऊ

● निर्देशन :

[illegible] नारायण राय
प्राचार्य
मानविकी और सामाजिक विज्ञान विभाग
इलाहाबाद

● प्रस्तुति :

दुर्गा प्रसाद द्विवेदी
प्रवक्ता
मानविकी और सामाजिक विज्ञान विभाग
इलाहाबाद

● सहयोग :

इन्द्रपाल यादव
प्रवक्ता
मानविकी और सामाजिक विज्ञान विभाग
इलाहाबाद

"किसी भी समाज में अध्यापकों के दर्जे से उसकी सांस्कृतिक, सामाजिक दृष्टि का पता लगता है। कहा गया है कि कोई भी राष्ट्र अपने अध्यापकों के स्तर से ऊपर नहीं उठ सकता। सरकार और समाज को ऐसी परिस्थितियाँ बनानी चाहिए जिनसे अध्यापकों को निर्माण और सृजन की ओर बढ़ने की प्रेरणा मिले। अध्यापकों को इस बात की आजादी होनी चाहिए कि वे नये प्रयोग कर सकें और सम्प्रेषण की नयी विधियाँ और अपने समुदाय की समस्याओं के अनुरूप नये उपाय निकाल सकें।"

—राष्ट्रीय शिक्षा नीति

अनुक्रम

			पृष्ठ
1. दृष्टिकोण	—	श्री श्याम नारायण राय प्राचार्य मानविकी और सामाजिक विज्ञान विभाग, इलाहाबाद	7
2. दिशाबोध	—	डॉ० शम्भूनाथ उपाध्याय भूतपूर्व यूनेस्को विशेषज्ञ	9
3. उद्‌बोधन	—	डॉ० राम शकल पाण्डेय अध्यक्ष–शिक्षा संकाय इलाहाबाद विश्वविद्यालय	13
4. समाहार	—	श्री हरि प्रसाद पाण्डेय निदेशक राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, उत्तर प्रदेश	18
5. सामूहिक चिन्तन	—	—	23
6. निष्कर्ष	—	—	39
7. संगोष्ठी की संस्तुतियां	—	—	43

		पृष्ठ
8. परिशिष्ट :		
(क) आधार पत्रक	—	45
(ख) स्थिति पत्रक : उत्तर प्रदेश	—	57
(ग) विद्वान प्रतिभागियों द्वारा प्रस्तुत विचार पत्रक	—	65
1—पूर्व प्राथमिक शिक्षा : भावी स्वरूप	श्रीमती किरन बाला पाण्डेय प्राचार्या राजकीय शिशु प्रशिक्षण महाविद्यालय इलाहाबाद	
2—सेवापूर्व प्रशिक्षण की वर्तमान स्थिति	डॉ० शशिप्रभा भदौरिया प्राचार्या जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान लखनऊ	69
3—Teacher Education ; A Prospective View	Dr. Sarla Pandey Reader & Dean Faculty of Education Kashi Vidyapeeth, Varanasi	73
4—Personalized Teacher Education : An Innovation.	Dr. Chhaya Gupta Institute of Education Devi Ahilya Vishwa Vidyalaya Indore.	76
5—Teachers Training Colleges and Practising Schools : ways to bridge the gap.	Dr. V. K. Rai Lecturer Deptt. of Education S. D. J. P. G. College Chandeswar, Azamgarh, U. P.	81
(घ) कार्यक्रम	—	86
(ङ) संगोष्ठी में सम्मिलित शिक्षा वद् एवं प्राध्यापक गण	—	87

***

१

दृष्टिकोण

—श्याम नारायण राय
प्राचार्य
मानविकी और सामाजिक विज्ञान विभाग
इलाहाबाद

आज शिक्षक-शिक्षा संक्रान्ति काल से गुजर रही है। शिक्षक से देश, काल और समाज की अपेक्षाएँ बढ़ती जा रही हैं जबकि शिक्षक यथास्थिति में पड़ा है। विगत में अनेक कदम उठाये गये, परिवर्तन की दिशाएँ निर्धारित की गयीं पर शिक्षक अपनी जगह से टस से मस नहीं हुआ। सारी योजनाएँ, सारी कल्पनाएँ वैसी की धरी रह गयीं।

तो हम शिक्षक को ऊपर कैसे उठायें? उसके कार्य और व्यवहार में किस रूप में परिवर्तन करें कि उसके अपेक्षित परिणाम हमें प्राप्त होने लगें। शिक्षक को बदलना, उसमें नयी अभिवृत्तियों को जन्म देना कोई सरल कार्य नहीं है। वह सुन सब लेगा लेकिन करेगा अपने मन की। उसका मन कैसे बदला जाय, उसके विचार कैसे बदले जायँ? वह जल्दी बदलेगा ही नहीं क्योंकि जमाने भर के विचार और सिद्धान्त उसके पास होते हैं।

बदलाव कहीं भी बड़ा कठिन होता है। आदमी कुछ आदतों, कुछ प्रवृत्तियों में चिपका रहता है, उसे छोड़ना ही नहीं चाहता। इसके लिए काफी जोर-जबरदस्ती करनी पड़ती है, एक आदत छुड़ाकर नयी आदत डालनी पड़ती है।

तीन दिन की संगोष्ठी समाप्त हो गयी। विद्वानों ने अपने अनुभवपूर्ण विचार दिये। इनमें से कुछ नये हैं और कुछ पुराने। सामंजस्य बैठाकर आगे बढ़ना होगा। शिक्षा और शिक्षण का कोई भी एक निष्कंटक राज-मार्ग आज तक नहीं बना है। युगधर्म के अनुसार प्रत्येक देश और समाज ने अपने-अपने मार्ग का निर्माण किया है।

शिक्षक-शिक्षा में हमें आज व्यापक परिवर्तन की स्थिति दिखायी देती है किन्तु इस परिवर्तन की दिशा क्या होनी चाहिए, यह एक गम्भीर प्रश्न है। शिक्षक-शिक्षा में परिवर्तन के सम्बन्ध में सावधानी इसलिए भी अपेक्षित है कि इसका परिणाम मानव को, मानव समाज को भोगना पड़ता है। इसीलिए विद्वानों, शिक्षाविदों,

अनुभवी शिक्षकों की राय लेना, उनके विचार जानना समीचीन है। सम्मिलित विचारों में अधिक बल होता है, उसमें त्रुटियों की सम्भावनाएँ क्षीण होती हैं।

संगोष्ठी से हमने जो महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्राप्त किये हैं, कारगर संस्तुतियाँ प्राप्त की हैं, वे शिक्षक शिक्षा को गतिशील करने में सक्षम होंगी। हमें अतीव हर्ष है कि जिनकी प्रेरणा से ये सब कार्य हो रहे हैं, वे श्री पाण्डेय जी, निदेशक रा० शै० अनु० और प्रशि० परि० उ० प्र०, हमें अग्रसर करने में मार्गदर्शक रहे हैं। वे शैक्षिक सुधार के लिए स्वयं भी बहुत व्यग्र हैं। उन्होंने इसके निष्कर्षों को शासन स्तर और अपने स्तर पर कार्यान्वित करने-कराने का संकल्प व्यक्त किया है। यही इस संगोष्ठी की सफलता हैं, यही इसका वास्तविक प्रतिफल है।

इस संगोष्ठी को देश और प्रदेश के लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों ने उद्बोधित और सम्बोधित किया। एन. सी. ई. आर. टी. नयी दिल्ली, क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय अजमेर, प्रयाग विश्वविद्यालय तथा गोरखपुर विश्वविद्यालय के शिक्षाविदों और अन्य विशेषज्ञों ने हमारा मार्ग दर्शन किया। इसके साथ ही प्रदेश के एल० टी० एवं बी० एड० के विशेषज्ञों ने प्रतिभाग करके गोष्ठी को अत्यधिक मूल्यवान बना दिया। इन सब महानुभावों के प्रति हम हार्दिक रूप से कृतज्ञ हैं और उनके प्रति आभार प्रकट करते हैं।

***

२

दिशा बोध

डॉ० शम्भूनाथ उपाध्याय
भूतपूर्व यूनेस्को विशेषज्ञ

आदरणीय अध्यक्ष महोदय, इस संस्थान के प्राचार्य श्री राय, विद्वान प्रतिभागीगण तथा भाइयों और बहनों !

आपने संगोष्ठी में विचार-विमर्श के लिए जिस विषय को चुना है, वह शिक्षक-शिक्षा की दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण और समसामयिक है। इसका विचार फलक इतना विस्तृत है कि मेरी समझ में ही नहीं आ रहा है कि आज इस अवसर पर मैं अपनी बात कहाँ से आरम्भ करूँ। इस विषय पर मेरे सामने कुछ मौलिक प्रश्न हैं, जिनकी चर्चा मैं संक्षेप में आपसे करना चाहता हूँ।

आप सब जानते हैं कि शिक्षा का सम्बन्ध सदा से दर्शन के साथ रहा है और दर्शन के माध्यम से ही शिक्षा ने अपने गन्तव्यों और लक्ष्यों का निर्धारण किया है। वस्तुतः शिक्षा कोई स्वतन्त्र विषय नहीं है। यह एक 'एप्लायड' विषय है। यह इतना उदार विषय है कि जहाँ से भी हमें ज्ञान मिलता है, समझ और सूझ-बूझ प्राप्त होती है, जो हमारा कल्याण करता है तथा समाज की भलाई करता है, वह शिक्षा का विषय बन जाता है।

प्राचीन काल में दार्शनिकों के माध्यम से ही शिक्षा का जन्म हुआ। इस सम्बन्ध में किसी महान विद्वान का कथन है कि शिक्षा वस्तुतः दर्शन का क्रियात्मक पक्ष है। शिक्षा को साकार करने में जो-जो आवश्यकताएँ होती हैं, वे सब पुराने जमाने में दार्शनिक से प्राप्त होती थीं क्योंकि वही तब सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों का सर्जक, विवेचक और प्रयोगकर्ता होता था। शिक्षा के सारे गुरु, सारे सिद्धान्त उसी से प्राप्त होते थे। प्लेटो, टैगोर, गान्धी, अरविन्द आदि वास्तविक रूप में दार्शनिक थे और इनकी अपनी-अपनी विचार धाराएँ थीं, जिन्हें वे समाज में स्थापित करना चाहते थे। शिक्षा की यही परम्परा सारी दुनिया में चली आ रही है क्योंकि शिक्षा का आधार दर्शन रहा है।

द्वितीय युद्ध के पश्चात् संसार में एक महान परिवर्तन हुआ। इससे साइंस और टेकनालाजी का जन्म हुआ। देखते ही देखते साइंस और टेकनालाजी जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में छा गयी, व्याप्त हो गयी। शिक्षा का क्षेत्र भी इससे अछूता नहीं रहा और उसमें भी साइंस और टेकनालाजी का बड़ी तेजी से प्रवेश हुआ और इस विचारधारा ने सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था को अपने बाहुपाश में जकड़ लिया। एजूकेशनल टेकनालाजी को तो आप जानते ही हैं, इसी के साथ टेकनालाजी के जितने शब्द थे, सब शिक्षा में समाहित हो गये। इसी समय दुनिया में आर्थिक विकास की अवधारणा का बड़ी तीव्रता से प्रादुर्भाव हुआ। इन दोनों विचारधाराओं ने

मनुष्य की नियति को ही बदल दिया और शिक्षा को भी बहुत अधिक प्रभावित किया। धीरे-धीरे शिक्षा का सम्पूर्ण क्षेत्र साइंस, टेकनालाजी और अर्थशास्त्र की प्रवृत्तियों और सिद्धान्तों से भर गया। हमने शिक्षा में बहुत से नये-नये शब्दों को प्राप्त कर लिया—फ्लैण्डर एनलिसिस, टीचिंग मशीन, इण्टरैक्शन एनलिसिस आदि न जाने कितने शब्द और विचार शिक्षा में समाहित हो गये। इस प्रकार शिक्षा का जहाँ से आविर्भाव हुआ था और प्राचीनकाल से जिस मार्ग पर हम चल रहे थे, आधुनिक युग में उसके मूल्यों और अवधारणाओं में बड़ा भारी परिवर्तन हो गया। शिक्षा का सारा आकर्षण आर्थिक विकास और तकनीकी के प्रयोग में खो गया। इसका परिणाम यह हुआ कि शिक्षा एक व्यवसाय बन गयी और शिक्षक के मन में 'स्वान्तः सुखाय' नाम की कोई भावना ही नहीं रह गयी। सारी शिक्षा मशीन की तरह संचालित होने लगी।

यह हमारी आज की शिक्षा का विकासात्मक दिग्दर्शन है। शिक्षा को मूर्तरूप देने का कार्य शिक्षक करता है। उसकी योग्यता और अभिवृत्ति पर ही विद्यालय का संसार खड़ा होता है। हर सभ्य समाज ने सदा ही अपने शिक्षकों का आदर किया है, उनसे अधिक चरित्रनिष्ठ, कार्यकुशल और दक्ष होने की आकांक्षा की है। विचारपूर्वक देखा जाय तो शिक्षक-शिक्षा में दो प्रकार की विचार धाराएँ प्रचलित रही हैं। प्रथम विचारधारा के अन्तर्गत यह माना जाता है कि शिक्षक को अपने पाठ्य विषय का पूर्ण ज्ञाता होना चाहिए। जो शिक्षक अपना विषय भली भाँति जानता है, अध्ययन में—नये-नये ज्ञान की प्राप्ति में रुचि रखता है, वह बच्चों को भली प्रकार पढ़ा सकता है, उनका मार्ग दर्शन कर सकता है। दूसरी धारणा यह है कि विषय का ज्ञाता होना एक बात है और उसे दूसरों को बताना या समझाना उससे भिन्न दूसरी बात है। कोई भी व्यक्ति विषय का ज्ञाता होने मात्र से अपने विषय को छात्रों तक तब तक नहीं पहुँचा सकता जब तक कि उसे सम्प्रेषण कला में दक्षता न मिली हो। इसलिए शिक्षक को अपने ज्ञान तथा अनुभव को छात्रों तक प्रभावशाली ढंग से पहुँचाने के लिए, शिक्षण विधियों, शिक्षण कौशलों, शिक्षण की आधुनिक प्रवृत्तियों का सम्यक बोध और अनुभव होना चाहिए। शिक्षण के क्षेत्र में इस विचारधारा का आधुनिक युग में विकास अमेरिकी पद्धति के कारण हुआ। उनका मानना है कि अध्यापक शिक्षा अध्यापक के जीवन का अभिन्न अंग है। शैक्षिक सिद्धान्तों और शिक्षण विधियों में निष्णात हुए बिना कोई भी व्यक्ति एक कुशल शिक्षक बन ही नहीं सकता।

अगर आप विचार करके सोचें तो दोनों विचारधाराएँ अकेले-अकेले अपूर्ण हैं। अध्यापक को अपने विषय का ज्ञाता होना चाहिए साथ ही उसे शिक्षण विधियों के प्रयोग में भी कुशल होना चाहिए। शिक्षक को आधुनिक शिक्षा के विकासात्मक चरणों का भी स्पष्ट बोध होना चाहिए जिससे वह अपने कर्तव्य मार्ग का वरण कर सके। मुझे स्मरण है कि उन्नीस सौ पचास के दशक में हमारे देश में शिक्षक-शिक्षा में 'कण्टेण्ट' तथा 'मेथडॉलाजी' का बड़ा सुन्दर समन्वय था। सौभाग्य से मैं इसी संस्था का छात्राध्यापक रहा हूँ। तब यहाँ प्रशिक्षणार्थी के एक-एक कार्य और व्यवहार पर ध्यान दिया जाता था। अध्यापक में एक सामाजिक अभिवृत्ति पैदा करने के लिए सामूहिक जीवन और सामूहिक क्रिया-कलापों पर विशेष बल था। व्याख्यान के माध्यम से शिक्षा दर्शन, शिक्षा मनोविज्ञान, शिक्षण विधियों आदि का सैद्धान्तिक ज्ञान दिया जाता था और उसी के आधार पर कक्षाओं में पढ़ाना भी पड़ता था। कई-कई बार पाठ योजना बनानी पड़ती थी। पूरे समय प्रशिक्षण कार्यों में व्यस्त रहना पड़ता था। एक पूर्ण शिक्षक बनने के लिए पी० टी०, खेलकूद, बागवानी

सामुदायिक कार्य—सभी कुछ करने पड़ते थे। हमें कड़े अनुशासन का पालन करना पड़ता था तथा प्रतिबन्धों और मर्यादाओं में जीना पड़ता था। आज जब जीवन के एकान्त क्षणों में सोचता हूँ तो वे सब बातें एक शिक्षक के लिए बड़ी ही सुखद लगती हैं।

अब शिक्षण और प्रशिक्षण की स्थितियों में काफी परिवर्तन हो गया है। आज जब बहुत से शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालयों की दुर्दशा के बारे में सुनता हूँ तो बड़ा कष्ट होता है। विश्वास ही नहीं होता कि ये शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालय हैं। मुझे बताया गया है कि ऐसे भी प्रशिक्षण महाविद्यालय हैं जहाँ केवल नामांकन कराने भर की आवश्यकता होती है? उनसे साल भर का मनमाना शुल्क ले लिया जाता है और परीक्षा 'पास' करने के 'गुरुमंत्र' बता दिये जाते हैं। प्रशिक्षण का सारा काम स्वयं प्रशिक्षण महाविद्यालय पूरा कर देता है और प्रशिक्षणार्थियों को न कुछ सोचना पड़ता है और न कुछ सीखना पड़ता है। इस प्रकार उन्हें डिग्री या डिप्लोमा प्रदान कर दिया जाता है। यदि ये बातें सच हैं तो निश्चय ही शिक्षक शिक्षा की स्थिति बड़ी ही दयनीय है। हमें ऐसी शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं को तात्कालिक प्रभाव से बन्द कर देना चाहिए।

जीवन के किसी क्षेत्र में जब हम किसी विकास की बात सोचते हैं तो विदेशों की नकल करना हमारा पेशा सा हो गया है। हम विचारपूर्वक अपने आधार, अपनी जमीन को तैयार ही नहीं करते। दुनिया में एक ऐसा अद्भुत विकासशील देश है जहाँ शिक्षा देने के लिए किसी भी स्तर पर बाहरी देश का कोई नियुक्त नहीं होता। वहाँ जर्मनी का ही पढ़ा हुआ जर्मन विश्वविद्यालय का ही स्नातक शिक्षक बनने का अधिकारी होता है। वे अपने देश के शिक्षकों पर आज भी बड़ा गर्व करते हैं, बड़ा भरोसा करते हैं। शिक्षक को शिक्षक बनने के पूर्व कड़े अनुशासन और प्रशिक्षण से गुजरना पड़ता है। प्रशिक्षण अवधि के उपरान्त शिक्षक प्रत्याशी को दो वर्ष के 'प्रोवेशन' पर किसी विद्यालय में कार्य करना पड़ता है। उसकी अध्यापन और शिक्षकीय गुणों का प्रमाणीकरण वहाँ का हेडमास्टर करता है और वही यह भी निर्धारित करता है कि वह किस स्तर का शिक्षक है। इसके पश्चात् ही उसे शिक्षक बनने के लिए अधिकृत किया जाता है। मैं आपसे इसलिए कह रहा हूँ कि जिस विषय पर आपकी यह महत्वपूर्ण संगोष्ठी आयोजित की गयी है, शायद इस दृष्टिकोण से उसमें कुछ सहायता मिल सके।

हम एक ऐसे देश के निवासी हैं, जहाँ सुदूर अतीत में ही शिक्षा का आविर्भाव हो गया था और शिक्षक के विषय में बड़ी-बड़ी उदात्त कल्पनाएँ की गयीं थीं। आज वह समय नहीं रहा फिर भी यदि आज के जीवन-मूल्यों के अनुसार हम सोचें तो भी हम यही कह सकते हैं कि एक आदर्श शिक्षक को अपने विषय का परिपूर्ण ज्ञाता होना चाहिए, उसे अपने देश की सांस्कृतिक विरासत का बोध होना चाहिए, साथ ही शिक्षण के क्षेत्र में होने वाले नवीन परिवर्तनों के प्रति भी उसमें जागरुकता होनी चाहिए। उसे आज की परिवर्तित सामाजिक आकांक्षाओं और मूल्यों से भी परिचित होना चाहिए क्योंकि शिक्षक ही सामाजिक विकास और परिवर्तन का सबसे बड़ा स्तम्भ है। उसे प्रशिक्षण काल में ही सामाजिक अनुशासन और शिष्टाचार का भलीभाँति अवबोध कराया जाना चाहिए।

शिक्षक शिक्षा के सामने कुछ और भी समस्याएँ हैं। आज हम देख रहे हैं कि बड़ी संख्या में प्रशिक्षित बेरोजगार हैं। मेरी समझ में अब समय आ गया है कि माँग के अनुसार ही शिक्षकों को चयनित करके

प्रशिक्षित किया जाय। शिक्षक-शिक्षा के गुणात्मक विकास के लिए यह बहुत ही आवश्यक है। शिक्षकों का अनावश्यक निर्माण नहीं होना चाहिए क्योंकि बेकारी की स्थिति असंतोष उत्पन्न करती है और असंतुष्ट अध्यापक बहुत ही भयंकर, बहुत ही खतरनाक होता है। उसका कुप्रभाव उसके छात्रों को भोगना पड़ता है। इसलिए शिक्षक-शिक्षा को अनावश्यक अध्यापकों के उत्पादन से बचना चाहिए।

शिक्षा में या शिक्षक-शिक्षा में परिवर्तन करते समय हमें भारत की विशाल और गरिमामय शैक्षिक परम्परा को ध्यान में रखना चाहिए। आज हम शिक्षा द्वारा बालक को क्या बनाना चाहते हैं?—एक परिपूर्ण मानव, एक क्रित्रिम मानव या एक मशीन। तीनों के परिणाम हमारे सामने हैं। भारतीय शिक्षण परम्परा परिपूर्ण मानव पर बल देती रही है और इसी रूप में आज तक अक्षुण्ण बनी हुई है। यही इसका आदर्श और निरन्तरता है जो सम्पूर्ण देश को आदर्शों और मर्यादाओं में बाँधे हुए है। क्रित्रिम मानव की स्थिति के बारे में सोचिये। रूस ने अपने क्रान्तिकारी विचारों द्वारा क्रित्रिम मानव बनाने का हर सम्भव प्रयास किया पर वह बिखरने से न बच सका। तीसरे प्रकार के मशीनी मानव के विकास की अमेरिकी संकल्पना ने मनुष्य को हृदय शून्यता और महाविनाश के निकट खड़ा कर दिया है।

ऐसी स्थिति में हमें विश्व में प्रचलित मानव जीवन के प्रति विभिन्न दृष्टिकोणों के अन्धानुकरण से बचने की भी आवश्यकता है तथा भारतीय संस्कृति, भारतीय परिवेश और भारतीय परिस्थितियों में ही शिक्षक-शिक्षा की सभी व्यवस्थाओं को स्थापित और विकसित करना चाहिए। हमारे कहने का यह तात्पर्य नहीं कि हम दूसरों की अच्छाइयों को न ग्रहण करें अपितु हमारा बल इस बात पर होना चाहिए कि हम अपनी अच्छाइयों का परित्याग भी न करें और अपनी पृष्ठभूमि में ही दूसरों की विशेषताओं को समाहित करें।

शिक्षक-शिक्षा के विषय में हमारे मन में जो बातें थीं, उन्हें मैंने आपके सामने विचारार्थ रखा है। इस तीन दिवसीय संगोष्ठी में आप शिक्षक-शिक्षा के विषय में परस्पर विचार-विनिमय करेंगे और कुछ निष्कर्ष भी निकालेंगे। मेरा अभिमत है कि संगोष्ठी के माध्यम से जो भी समन्वित निष्कर्ष आप प्राप्त करें, उसे कार्यरूप देने का भी प्रयास करें क्योंकि शिक्षा के स्तर को ऊपर उठाने के लिए शिक्षकों के स्तर को ऊपर उठाना ही पड़ेगा।

मैं आपकी इस संगोष्ठी का उद्घाटन करते हुए इसकी सफलता की कामना करता हूँ।

***

३

उद्बोधन

डॉ० राम शकल पाण्डेय

अध्यक्ष—शिक्षा संकाय

प्रयाग विश्वविद्यालय

अध्यक्ष के रूप में विराजमान राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, उत्तर प्रदेश के निदेशक श्री पाण्डेय जी, इस संस्थान के प्राचार्य श्री राय, विद्वान प्रतिभागीगण, देवियों और सज्जनों !

अभी कुछ क्षणों पूर्व आपके समक्ष 'तरुण शिक्षक' नामक पत्रिका का विमोचन किया गया जिसके नाम मात्र से मन में उत्साह भर गया। यदि शिक्षक और विशेष रूप से शिक्षक-प्रशिक्षक अपने को तरुण अनुभव करने लगें तो शिक्षा की बहुत सी समस्याओं का हल हो सकता है। जब कहा जाता है कि हमारी शिक्षा में कुछ कमी आ गयी है और शिक्षा को एक आदर्श स्वरूप होना चाहिए; जब कहा जाता है कि शिक्षा एक पवित्र भाव है और यह शब्द ही पवित्रता का बोधक है, तो इससे कई गुना पवित्रता का भाव होना चाहिए था शिक्षक-शिक्षा के प्रति। यदि शिक्षक समाज में श्रेष्ठ है, वरेण्य है, आदरणीय है तो इससे भी कई गुना वरेण्य और आदरणीय होना चाहिए शिक्षक-शिक्षा को, पर कुछ संयोग ऐसा है कि मुझे यह बात आज कहीं नहीं दिखायी देती। विश्व विद्यालय का दूसरे संकाय का शिक्षक कभी-कभी अपने को अधिक श्रेष्ठ, अधिक योग्य समझता है और आश्वर्य तो तब होता है जब वह अपने आप को अधिक चरित्रवान भी मानने लगता है। यह, हमारी समस्याओं का जन्म यहीं से होता है।

बहुत अच्छा संयोग है कि एस. सी. ई. आर. टी. उत्तर प्रदेश के निदेशक जी भी आज यहाँ विद्यमान हैं। मैं उनसे अवश्य यह निवेदन करूँगा कि शिक्षक प्रशिक्षक के पारिश्रमिक से लेकर उनके कार्य कलाप, समाज में उनके स्थान और आदर भाव आदि की स्थितियों पर गम्भीरतापूर्वक विचार करें और उनके समाधान की योजनाएँ बनायें। मेरी इनसे जब-जब बातें होती हैं, ये शिक्षा और शिक्षकों के सुधार के प्रति चिन्तित दिखायी देते हैं। मैं यह बात आरम्भ में ही इसलिए कह रहा हूँ कि कुछ शिक्षक-प्रशिक्षक जब मुझसे मिलते हैं और अपनी सेवा शर्तों आदि के विषय में बातें करते हैं तो मुझे दुःख होता है। यदि किसी प्राइवेट ट्रेनिंग कालेज का शिक्षक-प्रशिक्षक अपने को विश्वविद्यालय के शिक्षक-प्रशिक्षक से हीन समझता है, समाज में अपने को कम आदर का पात्र समझता है, तो शिक्षा और शिक्षक की क्या दशा होगी ? वह शिक्षक जो समाज का आदरणीय प्राणी है, उसको प्रशिक्षित करने वाला, मार्ग दिखाने वाला तो बड़ा ही आदरणीय और गौरवशाली होना चाहिए।

आपने शिक्षक शिक्षा पर तीन दिनों तक गम्भीर विचार-मन्थन किया है और समवेतरूप में संस्तुतियों को प्रस्तुत किया है। आप जिन निष्कर्षों पर पहुँचे हैं, उनकी मैंने विवेचना की है। उनमें से अधिकांश से हम सभी सहमत हैं। प्रत्येक राष्ट्रस्तरीय गोष्ठी में इन बातों पर विचार होता है और निष्कर्ष निकाले जाते हैं किन्तु उसके बात उसका कुछ अता-पता नही लगता। मुझे ऐसा लगता है कि इस गोष्ठी में आपने जो निर्णय लिये हैं, वे क्रियान्वित भी किये जायँगे क्योंकि जिनका दायित्व इनके क्रियान्वयन का है, वे हमारे मध्य बैठे हैं और शिक्षा में सुधार के प्रति प्राणपण से सचेष्ट हैं। आपकी इस संगोष्ठी का यह बड़ा ही शुभ पहलू है।

शिक्षक-शिक्षा के नये आयाम और सम्भावनाएँ विषय पर मिल-बैठकर इस संगोष्ठी में तीन-दिनों तक आपने गम्भीर चिन्तन-मन्थन किया है। आपने इसके तमाम पहलुओं पर विचार किया होगा। मैं इस अवसर पर आपसे दो-तीन बातों की चर्चा करूँगा।

जब कभी भी हम किसी विकास की प्रक्रिया में कमी की तुलना करना चाहते हैं या यों कहिये कि हम समझने की दृष्टि से चाहते हैं कि अमुक देश अथवा अमुक समाज विकास कर रहा है कि नहीं, तो इसका निर्धारण कैसे किया जा सकता है? हमारे पास क्या कसौटी है कि हम कह सकें कि अमुक देश विकसित हो गया है, अमुक देश अविकसित है। हमारे गाँव वाला भी सोचता है कि अमेरिका ने अधिक विकास किया या रूस ने? अभी दो वर्ष पूर्व तक हर व्यक्ति इस प्रकार का विचार किया करता था। आज रूस की स्थिति आपके सामने है। सारा विकास पल भर में ढह गया। आखिर विकास की क्या कसौटियाँ हो सकती हैं?

मेरे विचार से इसकी तीन कसौटियाँ हैं। इसकी पहली कसौटी, बाह्य कसौटी है। एक प्रकार से यह बाह्य संगठन का ढाँचा होता है। संविधान कैसा है, संगठन कैसा है, प्रशासन कैसा है, समस्याएँ कैसी हैं—इनसे हम पता लगाते हैं कि विकास का वाह्यरूप क्या है? विकास का यह बाह्यरूप ही है जिसे देखकर दूसरा समाज या देश भी अपने ढाँचे में परिवर्तन करता है। बाह्यरूप से जब एक समाज दूसरे समाज को चन्द्रमा तक पहुँचते देखता हैं तो वह उसको अधिक विकासशील मान लेता है और वैसा करने के लिए तत्पर हो जाता है। रूस ने 1958 में जब अपना पहला 'स्पुटनिक' छोड़ा तो अमेरिका में हड़कम्प मच गया। वहाँ के वैज्ञानिक अन्वेषण और वैज्ञानिक शिक्षा में तीव्रता से परिवर्तन कर दिये गये। इसी प्रकार हम अपनी सामाजिक संस्थाओं में भी परिवर्तन करते हैं। विकास और प्रगति की ओर जाने की यह वाह्य कसौटी है।

विकास की दूसरी कसौटी है अस्तित्वपरक रूप। अस्तित्वपरक रूप से मेरा आशय यह है कि आपने संविधान बना लिया, प्रशासनिक ढाँचा बना लिया, संगठन बना लिया—सब कुछ बाह्य रूप से ठीक कर लिया लेकिन वहाँ की जनता का क्या हुआ? वहाँ के आम लोगों का विकास हुआ कि नहीं। वहाँ का जन सामान्य किस दशा में हैं? उनके जीवन में, उनकी परिस्थितियों में कोई परिवर्तन हुआ या नहीं। इन बातों का उत्तर अस्तित्वपरक कसौटी से मिल सकता है। ढाँचा कुछ भी हो, वास्तविकता इस बात में छिपी है कि इस अस्तित्वपरक रूप में कितना विकास, कितना परिवर्तन हुआ! हमारे लिए यह अधिक महत्वपूर्ण बात है। इसी प्रकार शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में भी अस्तित्वपरक रूप की कसौटी लागू होती है। हमें जानना पड़ता है कि शिक्षक-प्रशिक्षकों तथा छात्राध्यापकों के सम्बन्ध कैसे हैं? उनमें कितना अधिक तादात्म्य और सामंजस्य है?

उनमें परस्पर आदान-प्रदान की क्या स्थितियाँ हैं ? उनके अन्तः सम्बन्धों में कितनी समरसता है ? उनके आचार-विचार क्या हैं और उनके कार्य तथा व्यवहार के परिवर्तन का समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है ? स्पस्ट हैं कि अस्तित्वपरक रूप की इस दूसरी कसौटी से विकास और प्रगति की अधिक समीचीन विवेचना की जा सकती है। बाह्य रूप में परिवर्तन करने और अस्तित्वपरक रूप को नकारने का परिणाम कभी भी पूर्ण विकास का पर्याय नहीं बन सकता।

विचार करें तो यही अस्तित्वपरक कसौटी हमारी सम्पूर्ण शिक्षा व्यवस्था पर लागू होती है। हमने विद्यालय का सुन्दर बाह्य ढाँचा बना लिया, उसे संचालित करने के लिए नियम-कानून बना लिये पर जब तक हम यह न सुनिश्चित कर पायें कि वहाँ के प्रशासक और व्यवस्थापक कैसे हों, उनमें परस्पर उदात्त और कार्यकारी सम्बन्धों की स्थापना कैसे की जाय, उनमें मानवीय अन्तः क्रियाओं की स्थापना के क्या मानदण्ड निर्धारित किये जायँ, विद्यालय अपनी गतिविधियों द्वारा समाज को कैसे प्रभावित करे और उसमें आवश्यक परिवर्तन उत्पन्न करे आदि ऐसे विचारणीय बिन्दु हैं जो संस्थाओं के अस्तित्वपरक रूप स जुड़े हुए हैं। शैक्षिक परिवर्तन के समय हमें इन तथ्यों पर गम्भीरता से विचार करना चाहिए। विकास की यात्रा में इनकी अनदेखी नहीं की जा सकती। 'आईंस्टीन' तथा 'बर्ट्रेण्ड रसेल' जैसे विचारक परेशान थे कि बाह्य विकास की इस धारा में मनुष्य का अस्तित्वपरक रूप सुरक्षित भी रह पायेगा या नहीं।

विकास की एक तीसरी कसौटी भी हमारे सामने है जो सबसे महत्वपूर्ण है और वह है जीवन के प्रति दृष्टिकोण का निर्माण। इसके अन्तर्गत हम यह पता लगाते हैं कि किसी देश या समाज के नागरिकों का जीवन के प्रति दृष्टिकोण क्या है ? जीवन के प्रति दृष्टिकोण निर्माण में यदि कोई कमी रह जाती है तो सत्तर-पचहत्तर वर्ष बाद भी हम उसे बदल देते हैं। रूस में क्या हुआ ? वहाँ बाह्य ढाँचे में तो बहुत विकास हुआ, बहुत परिवर्तन हुआ किन्तु जीवन के प्रति किसी नवीन दृष्टिकोण का विकास नहीं हो सका, फलतः एक लम्बी अवधि के समन्वित और कठोर शासन के बाद भी रूस बिखर गया—पुनः अपने टुकड़ों-टुकड़ों में बँट गया—क्रिश्चियन क्रिश्चियन हो गये, मुसलमान मुसलमान हो गये। वहाँ न तो अस्तित्वपरक कसौटी का निर्माण हुआ और न ही जीवन के प्रति नये दृष्टिकोण का विकास हुआ। सारा विकास ऊपर-ऊपर होता रहा और रूस को विखराव से नहीं रोका जा सका।

यही सिद्धान्त शिक्षा को भी प्रभावित करते हैं। हमारा अनुभव है कि शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं के बाह्य ढाँचे में तो परिवर्तन कर लिया जाता है और छात्र तथा शिक्षक के रूप में अस्तित्वपरक कसौटी को भी स्वीकार कर लिया जाता है फिर भी एक प्रश्न शेष रह जाता है कि शिक्षक और शिक्षार्थी ऐसा क्यों करें ? इन्हें क्या लाभ मिलने वाला है ? वस्तुतः यहीं जीवन के प्रति दृष्टिकोण निर्माण की बात आती है। दोनों पूर्वोक्त कसौटियाँ इसी जीवन के प्रति दृष्टिकोण पर निर्भर हैं। हम बालक को क्या बनाना चाहते हैं ? उसके व्यक्तित्व का सम्वर्द्धन उसे जीवन के प्रति कौन-सा दृष्टिकोण प्रदान करेगा यह शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है। शिक्षा जैसा पवित्र शब्द ही यह बताता है कि शिक्षा का परम उद्देश्य, इस तीसरी कसौटी अर्थात् जीवन के प्रति एक आदर्श दृष्टिकोण का निर्माण करना है।

शिक्षक-प्रशिक्षक संस्थाओं का बहुत बड़ा दायित्व है कि जब वे अपने यहाँ से प्रशिक्षित करके शिक्षकों को वास्तविक कार्यक्षेत्र में भेजें तो यह पूर्ण प्रयास करके भेजें कि देश और समाज के अनुसार उनके दृष्टिकोण

में परिवर्तन हो गया हो। शिक्षक-प्रशिक्षण का सारा बल इसी पर होना चाहिए। हम शिक्षण-अभ्यास कराते हैं, शिक्षण के सिद्धान्त पढ़ाते हैं, साथ ही और भी बहुत से क्रियाकलाप सम्पादित करते हैं किन्तु ये सब मिलकर यदि शिक्षा और शिक्षण के प्रति एक प्रभावकारी दृष्टिकोण न बना पाये तो सिद्धान्त पढ़ाना और अभ्यास कराना दोनों व्यर्थ हो जायँगे। अभ्यास कराते ही इसलिए हैं कि उसके दृष्टिकोण में परिवर्तन आ जाय जिससे वह यह पता लगा सके, इसका अनुभव कर सके कि यदि शिक्षण एक कला है तो वह कैसे इस कला पर आधिपत्य जमा सकता है। सिद्धान्त के रूप में वह सूत्रों को रट सकता है परन्तु इससे उसका दृष्टिकोण नहीं बदलेगा। दृष्टिकोण बदलेगा तो उसके अभ्यास से, उसके कलात्मक पक्ष से। इसीलिए कहा जाता है कि शिक्षण को एक कला के ही रूप में लेना चाहिए। शिक्षण की तुलना बहुत से लोगों ने कविता से की है। कला और कविता, दोनों आनन्द के अभिधान हैं। शिक्षण प्रक्रिया यदि कलायुक्त, आनन्दयुक्त नहीं होगी तो जीवन के प्रति किसी भी दृष्टिकोण का निर्माण नहीं होगा। सारी बातें ऊपर ही ऊपर से चली जायँगी।

शिक्षकीय दृष्टिकोण का निर्माण आकस्मिक रूप से नहीं किया जा सकता। इसके लिए बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ता है, आदर्श और व्यवहार उपस्थित करने होते हैं तथा अनुकूल वातावरण की रचना करनी पड़ती है। इसका मूलभूत दायित्व शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं का है। उन्हें हर सम्भव प्रयास करना चाहिए कि उनके यहाँ से निकलने वाले शिक्षक अपने प्रति, अपने दायित्व और कार्य के प्रति और सबसे बढ़कर समाज के प्रति एक विकसित दृष्टिकोण लेकर जायँ। आप और हम सब मिलकर यदि यह प्रयास करें कि शिक्षण कला में निष्णात होने के लिए उसके भीतर के उत्स को, उसकी ऊर्जा को एक दृष्टिकोण में विकसित कर दें तो यह प्रशिक्षण की एक बड़ी भारी उपलब्धि होगी।

एक बात मेरे मन में बार-बार आती है कि आखिर शिक्षा देने का उद्देश्य क्या है? हम विद्यार्थी को क्या बनाना चाहते हैं? आज इसके विषय में बहुत कम लोग चिन्तित दिखायी देते हैं। अगर हमें विद्यार्थी के निर्माण की दिशा का ही पता नहीं है तो हम उसे क्या निर्देशन देंगे और कैसे उसके व्यक्तित्व का विकास करेंगे। अँधेरे में टटोलना ठीक नहीं। बहुत से लोग कहते हैं कि इससे हमको कोई मतलब नहीं—वे शिक्षा की इस कसौटी को स्वीकार ही नहीं करते और कहते हैं कि अध्यापक का यह काम है ही नहीं।

ऐसी ही एक राष्ट्र स्तरीय शिक्षक-शिक्षा संगोष्ठी में एक विद्वान प्राध्यापक ने मुझे एक बड़ी ही रोचक बात सुनायी। उन्होंने कहा कि यह शिक्षालय एक कारखाना है। छात्र इसके 'इनपुट' हैं और इनसे निकलने वाला प्राणी 'आउटपुट' है। यह सारा काम मेकेनिकल-मशीनरी की तरह चलता है। उन्होंने यह भी बताया कि इस मशीन को जितना तेज चलायें, उतना ही तेज चलती है और जितना मध्यम कर दीजिए, उतना मध्यम हो जायगी। यह जो छात्राध्यापक हमारे पास आता है, उसे हम इंजीनियर नहीं बनाना चाहते कि वह सब कल-पुर्जों को ठीक करने की जानकारी प्राप्त कर ले। इसे तो हम केवल मेकेनिक बनाना चाहते हैं कि यह सामान्य त्रुटियों को ठीक कर सके।

उक्त दृष्टिकोण है कुछ लोगों का क्षिक्षा के प्रति। मैं उनसे कहता हूँ कि यदि आप शिक्षक को 'मेकेनिक' बनाना चाहते हैं तो बनायें, पर शर्त यह है कि उसे एक अच्छा मेकेनिक बनायें। जीवन के दृष्टिकोण में परिवर्तन न हो और कोई अच्छा 'मेकेनिक' बन जाय, यह सम्भव ही नहीं। झाड़ू लगाने का भी काम कोई ठीक

से कर ही नहीं सकता जबकि जीवन के प्रति दृष्टिकोण में कोई अन्तर न आया हो। इसी तरह इक्का हाँकने का भी काम कोई अच्छी तरह तभी कर सकता है जबकि वह गीता की तरह उपदेश दे सके। कृष्ण अर्जुन के सारथी थे, रथ हाँक रहे थे लेकिन अपने साथ असामान्य सामर्थ्य लिये हुए थे। अर्जुन की इच्छा मात्र से पल-भर में दोनों सेनाओं से भरे हुए कुरुक्षेत्र मैदान के मध्य में उन्होंने रथ को खड़ा कर दिया। उनका दृष्टिकोण ही रथ हाँकने की कुशलता थी और इस प्रकार कर्म में कुशलता तभी आती है जब वह योग ले आये। इस प्रकार के दृष्टिकोण को जन्म दे—'योगः कर्मसु कौशलम्।' जिसके मन में कर्म के प्रति कोई भाव नहीं है, कोई दृष्टिकोण नहीं है वह कुशलता पूर्वक सामान्य कार्य भी कैसे कर सकता है?

जीवन के प्रति दृष्टिकोण का परिवर्तन मनुष्य के व्यक्तित्व को परिवर्तित कर देता है। अध्यापक बनना है तो अध्यापक बनने का व्यक्तित्व धारण करना होगा, अध्यापकीय दृष्टिकोण और प्रवृत्ति का विकास करना होगा। अध्यापन कोई ऐसा-वैसा कार्य नहीं, यह व्यक्ति और समाज के निर्माण का सबसे महत्वपूर्ण दायित्व है और तब भी अध्यापक बनाने का काम यदि 'मेकेनिक' बनाने तक सीमित कर दिया जायगा तो यह महान दुर्भाग्य का विषय होगा। जीवन में हम किस प्रकार चलें यह अलग बात है किन्तु शिक्षक-प्रशिक्षण में युग-धर्म के अनुकूल एक उत्कृष्ट रूप से कार्य करना ही श्रेयस्कर होगा।

मेरे मन में एक प्रश्न और उठ रहा है। शिक्षक-प्रशिक्षक के अतिरिक्त ज्ञान प्राप्ति के लिए और अधिक संकल्पवान कौन हो सकता है? शिक्षण के प्रति संकल्पित तथा आनंदित होने के साथ-साथ उसके दायित्व सुनिश्चित होने चाहिए। ज्ञान की नयी-नयी बातों की ललक उसके मन में होनी चाहिए। शैक्षिक शोध की भी अभिवृत्ति उसमें होनी चाहिए कि वह अपनी समस्याओं का बहुत कुछ स्वयं निराकरण कर ले। उसे कल्पना शील और सृजनशील भी होना चाहिए। उसका अन्तिम दायित्व उसके आस-पास के समाज के प्रति निर्धारित होना चाहिए। यहाँ समाज की अपेक्षा मैं समुदाय शब्द का प्रयोग अधिक समीचीन समझता हूँ। इसके अन्तर्गत हमें यह देखना होता है कि जिस समुदाय का वह सदस्य है और जिसके लिए वह कार्य कर रहा है, उसमें वह क्या परिवर्तन कर पा रहा है। अगर हम शिक्षक में सामाजिक गुणों और मूल्यों की अवतारणा नहीं कर पाते तो वह खोखला शिक्षक होगा, उसका न कोई चरित्र होगा और न कोई मूल्य।

मैं आज इस अवसर पर आपसे बहुत कुछ कहना चाहता था पर समयाभाव है। वस्तुतः आपने एक बड़े ही समसामयिक विषय पर संगोष्ठी का आयोजन किया है। इसकी आज बड़ी आवश्यकता है क्योंकि शिक्षक-शिक्षा में सुधार के बिना शिक्षण-प्रक्रिया में सुधार करने की बात एक कोरी कल्पना ही होगी।

आप की यह संगोष्ठी अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर सके, शिक्षक-शिक्षा में कुछ सुधार कर सके, शिक्षण प्रक्रिया को प्रभावी बनाने में सहायक हो सके, यही मेरी शुभ कामना है।

***

समाहार

श्री हरि प्रसाद पाण्डेय
निदेशक
राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
उत्तर प्रदेश

इस समारोह के मुख्य अतिथि आदरणीय डॉ० राम शकल पाण्डेय जी, गोरखपुर विश्वविद्यालय के शिक्षा संकाय के अध्यक्ष डॉ० मिश्र जी, उत्तर प्रदेश के एन० सी० ई० आर० टी० के सलाहकार प्रो० एस० के० गुप्त जी, श्री रुद्र नारायण शर्मा जी, एस० सी० ई० आर० टी० के निर्देशन विभाग के विशेषज्ञ, प्रदेश के विश्व विद्यालयों तथा महाविद्यालयों से आये विद्वान साथी गण !

आज मुझे इस बात की बड़ी प्रसन्नता हो रही है कि हमारे मानविकी और सामाजिक विज्ञान विभाग द्वारा आयोजित इस तीन दिवसीय संगोष्ठी में आपने आने का कष्ट किया। मैं समझता हूँ, काफी अर्से के बाद हम लोग इस विशेष प्रयोजन से यहाँ आपस में मिले हैं। मेरी समझ में शैक्षिक विकास की गतिविधियों पर सम्यक चिन्तन-मन्थन के लिए कहीं न कहा हम लोगों को अवश्य मिलना चाहिए।

मैं शिक्षा का विशेषज्ञ नहीं हूँ, आप सब विशेषज्ञों के साथ रहने के कारण थोड़ा बहुत शिक्षा के विषय में जानकारियाँ प्राप्त करता रहता हूँ। शिक्षक-शिक्षा के विषय में मेरा जो अनुभव हैं, आपके सामने दो शब्दों में रखना चाहता हूँ। मेरा यह अनुभव रहा है कि शिक्षा की सारी भित्ति, सारी नींव शिक्षक पर ही आधारित है लेकिन शिक्षक-शिक्षा को ही सबसे अधिक उपेक्षित किया गया है। चाहे प्राथमिक स्तर हो या माध्यमिक या विश्वविद्यालय, शिक्षक शिक्षा की व्यवस्था तथा अध्ययन-अध्यापन पर अपेक्षित ध्यान नहीं दिया गया है। शिक्षा विभाग में भी, हमने व्यवस्था तो ऐसी बनायी कि शिक्षकों को हम प्रशिक्षण देते रहें, उनके शिक्षण, पर्यवेक्षण और वर्गीकरण की व्यवस्था होती रहे लेकिन जो व्यवस्था बनी, उससे ऐसी स्थितियाँ उभरकर आयीं कि शिक्षक-शिक्षा की कोई देखने वाला नहीं रहा। हमारे यहाँ नियमों में यह व्यवस्था है कि प्रशिक्षण संस्थाओं को जिले का अधिकारी नहीं देखता, मंडल स्तर के अधिकारी के सोधे संरक्षण में होती हैं किन्तु इन अधिकारियों को प्रशिक्षण संस्थाओं को देखने का समय हो नहीं मिलता। हमने इनका स्तर तो उठा दिया पर स्थिति नहीं सुधरी। चाहे प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण हो चाहे माध्यमिक, उसको देखने वाला कोई नहीं है। वर्षों-वर्षों तक इन विद्यालयों में कोई नहीं जाता और इस प्रकार इनकी कठिनाइयों को शासन स्तर पर विचारार्थ प्रस्तुत करने का कोई अवसर ही नहीं आता। अतः हमारी शिक्षक-शिक्षा, जिसको विकास की दिशा में सबसे आगे रहना चाहिए, वह पीछे छूटती जा रही है। जिस शिक्षा को हम समाज के अनुरूप बना कर छात्रों

को देना चाहते हैं, उसका पूर्ण पूर्व नियोजन हो जाना चाहिए, उसके अनुसार उनकी पूरी तैयारी होनी चाहिए जिससे शिक्षक हमें समय के अनुरूप मिल सकें।

आज शिक्षा की जो स्थिति विद्यमान है, उसमें समय-समय पर समाज के अनुरूप कुछ परिवर्तन किये गये हैं। हमने शिक्षा के लक्ष्य में परिवर्तन किये हैं, कक्षाओं में नये-नये पाठ्यक्रम लागू किये हैं और पढ़ाई के ढंग में भी परिवर्तन किये हैं लेकिन प्रश्न यह उठता है कि क्या हमारा शिक्षक आज उस स्थिति में है कि जो परिवर्तन हमनेकिये हैं और आज की राष्ट्रीय और सामाजिक स्थिति में उससे जो अपेक्षाएँ हैं, उसकी पूर्ति वह कर सकता है यदि इसका उत्तर नकारात्मक है तो यही निष्कर्ष निकलता है कि हमने शिक्षा में होने वाले परिवर्तनों और शिक्षक-शिक्षा में इतना बड़ा 'गैप' कर दिया है कि लक्ष्य को पाना असम्भव हो गया है। आज हम ट्रेनिंग कालेज में पुराने ढर्रे से शिक्षकों को तैयार कर रहे हैं और जब तक इनमें प्रशिक्षित अध्यापक विद्यालयों में पहुँचता है, परिस्थितियाँ बहुत कुछ बदल चुकी होती हैं। हमारे ट्रेनिंग कालेज आदर्श स्थितियों म संचालित होते हैं। बहुतों को क्षेत्र की वास्तविकता का पता ही नहीं होता। यहाँ प्रशिक्षणार्थी आठ-दस छात्रों की कक्षा में अध्यापन अभ्यास करते है और जब वे क्षेत्र के असली विद्यालयों में जाते हैं, जहाँ कक्षाओं में सौ-सौ [illegible] सौ बच्चे बैठे होते हैं, तो उनका साहस छूट जाता है। प्रशिक्षण काल में दुनियाभर की सुविधाएँ [illegible] हैं किन्तु ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यालयों में ब्लैक बोर्ड भी नहीं मिलता और कहीं-कहीं तो भवन और [illegible] लिए सुविधाजनक स्थान भी नहीं मिलता। यह हमारा वास्तविक परिवेश हैं जिस पर प्रशिक्षण काल में [illegible] दिया जाना चाहिए।

[illegible] भावी तरुण शिक्षक को ऐसा बनाना चाहते हैं कि वह भविष्य में आने वाली चुनौतियों का वीरता और साहस के साथ सामना कर सके; विषम परिस्थितियों को देखकर वह निराश-हताश न हो जाय, उसका मन [illegible] जाय। ये स्थितियाँ हम आज तक अपनी शिक्षक-शिक्षा में नहीं बना पाये हैं। इसके अनेक कारण [illegible] सकते हैं लेकिन एक बात स्पष्ट है कि शिक्षक-शिक्षा को न तो शासन स्तर पर और न ही विभाग स्तर पर [illegible] रूप से देखा जाता है। हमने बेसिक शिक्षा का अलग निदेशालय बनाया है, माध्यमिक और उच्च [illegible] अलग-अलग निदेशालय बनाये हैं लेकिन इन सबको चलाने वाला जो शिक्षक है, उसकी शिक्षा के लिए [illegible] से कोई रूप निर्धारित नहीं किया है। अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षक-शिक्षा को [illegible] अस्तित्व प्रदान किया जाय। अगर मैं विश्वविद्यालयों की बात करूँ, वहाँ भी इसका स्वतन्त्र अस्तित्व [illegible] है—वहाँ भी यह शिक्षा विभाग के एक अंग के रूप में संचालित होती है। जब हम प्रशिक्षण को महत्व [illegible] स्वतन्त्र स्वरूप प्रदान करेंगे, उस पर वरीयता क्रम से ध्यान देंगे, तभी हमारा तरुण शिक्षक भविष्य [illegible] चुनौतियों का सामना करने में समर्थ होगा।

[illegible] हम अपने प्रशिक्षण महाविद्यालयों में जो कुछ पढ़ा रहे हैं, सिखा रहे हैं वह सब बड़ा ही परम्परागत और [illegible] हो गया है। हमने इस वर्ष अपने एल० टी० के प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में परिवर्तन किया है फिर भी मेरा [illegible] यह है कि शिक्षक-शिक्षा में बड़ी तेजी से वे बातें, वे परिवर्तनकारी दिशाएँ आ जानी चाहिए, जो [illegible] पर उभर रही हैं और हमारे लिए उपयोगी हैं। कष्ट की बात तो यह है कि आज शिक्षक-प्रशिक्षण के माध्यम से जिन प्रशिक्षित शिक्षकों का निर्माण कर रहे है, शिक्षा में परिवर्तन की बहुत सी नयी

बातों से वे सुपरिचित ही नहीं होते। हम अपने प्रशिक्षण में भी उन्हें स्थान नहीं देते क्योंकि वे हमारे पाठ्यक्रम में निर्धारित ही नहीं होते।

हमें शिक्षक-प्रशिक्षकों की स्थिति पर भी ध्यान देना चाहिए। मेरे अनुभव में उन्हें भी शिक्षा की नयी प्रवृत्तियों, नये परिवर्तनों का गहराई से अनुभव नहीं होता है। इस दिशा में उनका बराबर निर्देशन नहीं होता, उन्हें ऐसे अवसर ही नहीं प्रदान किये जाते कि वे शिक्षा की नयी व्यवस्थाओं, नयी योजनाओं और नयी आवश्यकताओं के प्रति लोगों को आस्थावान बना सकें। स्थिति यह है कि अधिकांश प्रशिक्षण महाविद्यालयों में ऐसे ही शिक्षक-प्रशिक्षक हैं जो एक बार एल० टी० या बी० एड० की डिग्री या डिप्लोमा भर प्राप्त किये होते हैं। उन्हें अपने ज्ञान क्षितिज को विकसित करने, निरन्तर नये अनुभवों को ग्रहण करने तथा शिक्षा की नयी रीति-नीति को जानने समझने का अवसर ही नहीं मिलता।

शिक्षक-शिक्षा के नाम पर जब भी चर्चा होती है, विचार-विमर्श होता है, तो इसका आशय प्रायः हम सेवा पूर्व शिक्षक-शिक्षा से ही लेते हैं। मेरी समझ में आज सेवारत शिक्षक-प्रशिक्षण पर अधिक बल देने की आवश्यकता है। मेरा अनुभव है कि जो हमारे पुराने अध्यापक हैं, जिन्होंने आज से तीस साल पहले कोई प्रशिक्षण प्राप्त किया था आज की परिस्थितियों में वे अर्थहीन से हो गये हैं। आज शिक्षा में जो नयी अवधारणाएँ आयी हैं, शिक्षण में जिन नयी विधियों का विकास हुआ है, शिक्षा में जो नये आयाम समाहित हुए हैं, उनके प्रति वे पूर्णतः अपरिचित हैं। हमारे लगभग तीन चौथाई अध्यापक इसी श्रेणी में आते हैं। सेवापूर्व प्रशिक्षण के नाम पर अगर एक चौथाई नये प्रशिक्षित अध्यापकों को हमने भेजा भी तो उनका भी अपेक्षित प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि पुराने तीन चौथाई शिक्षक इस तरह की शिक्षा से अपरिचित रहते हैं और अपने पुराने ढर्रे से काम चलाते हैं। फिर थोड़े ये तरुण शिक्षक भी ठंढे हो जाते हैं क्योंकि बुजुर्ग शिक्षक उनके इन नये विचारों और प्रयोगों का उपहास करते हैं। इसलिए जरूरत इस बात की है कि जो पहले से प्रशिक्षित हमारे शिक्षक कार्यरत हैं, उन्हें शिक्षा के क्षेत्र की नयी-नयी जानकारियाँ प्रदान की जायँ। इसे केवल जानकारी के स्तर तक सीमित करना ठीक नहीं, इस व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करने की आवश्यकता है क्योंकि शिक्षण का बल तो व्यवहारिक ही है। हम उनके ज्ञानात्मक क्षेत्र का विकास अवश्य करें किन्तु शिक्षण विधियों, कौशलों और निर्देशन के बदले हुए तरीकों से भी अवगत करायें जिससे आज की कक्षाओं में हमारा कोई भी शिक्षक कठिनाई का अनुभव न करे।

हमें अनवरत अपनी शिक्षक शिक्षा को युग-धर्म के अनुसार परिवर्तित और परिवर्द्धित करते रहना है तभी हम शिक्षा द्वारा समय की माँग और भविष्य की चुनौतियों का सामना करने वाली पीढ़ी का निर्माण कर सकते हैं। हमने अपने प्राइमरी शिक्षण में दस साल पहले मल्टी ग्रेड टीचिंग की बात ही नहीं सोची थी, प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में भी स्थान नहीं दिया गया था लेकिन आज जब हम इन विद्यालयों में मल्टीग्रेड टीचिंग की बात करते हैं तो हमारा अध्यापक इसे समझ ही नहीं पाता। इसी प्रकार की और भी बहुत सारी बातें है। शिक्षा में परिवर्तन की प्रमुख भूमिका का निर्वाह करने वाले हमारे शिक्षक बीस-पचीस साल तक पढ़ाने के बाद शिक्षा की नयी प्रवृत्तियों से घिस पिट कर अलग हो जाते हैं उन्हें फिर से नवीन प्रवृत्तियों से अभिनवीकृत करने की आवश्यकता है। शिक्षा के लिए और शिक्षा विभाग के लिए यह एक बड़ी भारी चुनौती है।

जब हम सब मिलकर चलेंगे, हमारा आशय शिक्षाविदों, प्रशासकों और अध्यापकों से है, तभी शिक्षा के क्षेत्र में और शिक्षक-प्रशिक्षण के क्षेत्र में भी कोई नया विचार, कोई नयी विधि, कोई नया दृष्टिकोण ला सकेंगे। मैं तो सदा यह बल देता हूँ कि प्रशिक्षण को हम अन्य कक्षाओं की तरह न चलायें। भूगोल, इतिहास आदि की तरह उन्हें पढ़ाकर हम छोड़ न दें अपितु हम पढ़ायें, उसे करायें भी और जो करायें उसे ही व्याख्यायित करें जिससे वह कार्य करने की अपने से कोई अर्न्तदृष्टि विकसित कर सके। वह जाकर कक्षाओं में अपना एक अस्तित्व बना सके। सृजनशीलता, जागरुकता और आदरणीयता, ये तीनों, शिक्षक के विशिष्ट गुण हैं। अगर प्रशिक्षण में हम इन बातों का अनुभव शिक्षक को नहीं करा सके तो वह जिन बच्चों के सम्पर्क में आयेगा उनमें उत्साह नहीं भर सकेगा। यह तो एक संस्कार की बात होती है। शिक्षण और प्रशिक्षण वस्तुतः दोनों संस्कार ही होते हैं। यदि हम इन संस्कारों को सही ढंग से डाल सकें तो इससे हमारा राष्ट्र सुसंस्कृत होगा—संस्कार युक्त होगा। अगर हमने इसमें कुछ नहीं किया तो वही पत्थर जो शंकर हो सकता है, वह पत्थर का पत्थर भी रह सकता है। इसलिए मैं कहता हूँ कि शिक्षक शिक्षा को स्वतन्त्र अस्तित्व प्रदान करने की आवश्यकता है। यह इसलिए भी आवश्यक है कि हम योग्य शिक्षकों का निर्माण कर सकें। शिक्षक-प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम पर स्वतन्त्र रूप से विचार कर सकें और स्वतन्त्र होकर कार्य कर सकें; इसकी आवश्यकताओं और अपेक्षाओं के प्रति सामाजिक और शासकीय चेतना जागृत कर सकें।

हमें शिक्षा विभाग द्वारा संचालित शिक्षक प्रशिक्षण पर भी विचार करना चाहिए। यहाँ एल० टी० का पाठ्यक्रम संचालित होता है। इन पाठ्यक्रमों को चलाने वाले शिक्षक प्रशिक्षकों की आज तक न कोई सेवा नियमावली बनी, न सेवा शर्तें निश्चित हुईं जिनके बल पर हम शिक्षा विभाग में अध्यापकों को प्रशिक्षण देते हैं, उनकी सेवाओं के विषय में, उनकी सुविधाओं के विषय में हम कोई विशेष ध्यान नहीं दे सके। यह सम्भवतः इसलिए भी है कि हमारे एल० टी० शिक्षक प्रशिक्षक शांति एवं निष्ठा से कार्य करते हैं और इनकी संख्या कम होती है। इसलिए भी विभाग तथा शासन का ध्यान इस ओर नहीं जा पाता। हमें इस दिशा में भी सोचना है, कुछ काम करना है। शिक्षक-प्रशिक्षकों के उत्कर्ष के लिए इस प्रकार की संगोष्ठियों में प्रश्न उठाये जाते हैं लेकिन उनकी प्रतिपूर्ति के लिए कोई ठोस सुझाव एवं प्रस्ताव नहीं दिये जाते, इसलिए बात जहाँ की तहाँ रह जाती है।

अगर हम शिक्षक-शिक्षा को महत्वपूर्ण बनाना चाहते हैं, समसामयिक और उपयोगी स्वरूप प्रदान करना चाहते हैं तो शिक्षक-प्रशिक्षकों की सेवा शर्तें भी अच्छी बनानी पड़ेंगी, उन्हें उत्कृष्ट कार्य सम्पादन की परिस्थितियाँ और सुविधाएँ देनी पड़ेंगी जिससे अच्छे और सुयोग्य लोग इधर आकर्षित हो सकें, अच्छे अध्यापकों को जन्म दे सकें और शिक्षा द्वारा राष्ट्र और समाज की आवश्यकताओं की प्रतिपूर्ति कर सकें।

मै अन्त में श्री श्याम नारायण राय, जो इस संस्था के प्राचार्य हैं, के प्रति आभार व्यक्त करना चाहता हूँ कि शिक्षक-शिक्षा के ज्वलंत प्रश्न पर उन्होंने इस संगोष्ठी का आयोजन किया। विशेष रूप से मैं मुख्य अतिथि (डॉ०) पाण्डेय जी का आभारी हूँ जिन्होंने अपने महत्वपूर्ण विचारों से हमें उद्‌बोधित किया। मैं गोरखपुर विश्वविद्यालय के शिक्षा संकाय के अध्यक्ष डॉ० बी० एस० मिश्र के प्रति भी कृतज्ञ हूँ जिन्होंने इस संगोष्ठी के सम्पादन में अपना महत्वपूर्ण योगदान किया। मैं उन समस्त गण्यमान विद्वानों के प्रति भी हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने इसमें तीन दिनों तक प्रतिभाग करके अपने अनुभवपूर्ण विचारों से हमें लाभान्वित किया है।

मैं आपको इतना विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि आपकी जो संस्तुतियाँ होंगी, उनको हम दृढ़तापूर्वक क्रियान्वित करने का प्रयास करेंगे। हमारी योजना ही ऐसी है कि हमने इस प्रकार की जितनी कार्यशालाएँ या संगोष्ठियाँ आयोजित की हैं, उनकी संस्तुतियों को कारगर ढंग से लागू करने का प्रयास किया है।

मुझे आशा है, इस संगोष्ठी के माध्यम से शिक्षक-शिक्षा के विषय में जो भी निर्णय लिये गये हैं, वे शिक्षक शिक्षा के विकास और उत्कर्ष में हमारी सहायता करेंगे और अन्य सभी के सहयोग और प्रयास से हम शिक्षक-शिक्षा को आगे बढ़ा सकेंगे। आप सबको बहुत-बहुत धन्यवाद।

□

५

शिक्षक-शिक्षा के नये आयाम और सम्भावनाएँ

सामूहिक चिन्तन

राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, उत्तर प्रदेश के निदेशक श्री हरि प्रसाद पाण्डेय की प्रेरणा एवं निर्देशन से मानविकी और सामाजिक विज्ञान विभाग, इलाहाबाद में 'शिक्षक-शिक्षा के नये आयाम और सम्भावनाएँ' विषय पर 21-23 सितम्बर, 1992 की तिथियों में एक राष्ट्र स्तरीय संगोष्ठी का आयोजन किया गया जिसमें इलाहाबाद, गोरखपुर, काशी विद्यापीठ, कुमायूँ, बुन्देलखंड, इन्दौर विश्वविद्यालयों के शिक्षा संकायाध्यक्ष अथवा प्रतिनिधि, प्रदेश के शासकीय, अशासकीय शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों के विभागाध्यक्ष, सभी एल० टी० प्रशिक्षण महाविद्यालयों के प्राचार्य, एन० सी० ई० आर० टी०, नयी दिल्ली तथा शिक्षा महाविद्यालय अजमेर के प्रतिनिधि, स्थानीय लब्ध प्रतिष्ठ शिक्षाविद् तथा शिक्षक-प्रशिक्षक सम्मिलित हुए। संगोष्ठी में सम्पन्न तीन दिनों तक शिक्षक शिक्षा के विभिन्न आयामों पर विचार-विमर्श एवं चिन्तन-मन्थन का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत हैं।

उद्घाटन सत्र (21-9-92) स्वागत एवं उद्देश्य निरूपण :

संगोष्ठी का शुभारम्भ मानविकी और सामाजिक विज्ञान विभाग, इलाहाबाद के सभागार में पूर्वाह्न 11 बजे डॉ० विद्यासागर मिश्र, शिक्षा संकायाध्यक्ष, गोरखपुर विश्वविद्यालय, की अध्यक्षता में हुआ। उक्त अवसर पर मुख्य अतिथि के रूप में यूनेस्को के भूतपूर्व विशेषज्ञ डॉ० शम्भू नाथ उपाध्याय मंच पर विराजमान थे।

औपचारिकताओं की पूर्ति के पश्चात् प्राचार्य श्री श्याम नारायण राय ने अध्यक्ष, मुख्य अतिथि, आमंत्रित शिक्षाविदों, अतिथियों आदि का भावपूर्व स्वागत किया। संगोष्ठी के उद्देश्यों की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि आज हमारी शिक्षक-शिक्षा संक्रान्ति-काल से गुजर रही है। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि देश और समाज की आकांक्षाओं के अनुसार इसके सम्पूर्ण स्वरूप और कार्य प्रणाली पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने और निर्णय लेने की आवश्यकता है। शिक्षक-शिक्षा के वर्तमान स्वरूप की विवेचना करते हुए उन्होंने कहा आज ज्ञान और प्रयोग के विस्फोट के युग में हमारी शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाएँ उपेक्षित और यथास्थिति में पड़ी हुई हैं। विश्व स्तर पर बढ़ती हुई विकास की स्पर्धा, देश की बढ़ती हुई जनसंख्या, कक्षाओं में छात्रों की अपार वृद्धि को ध्यान में रखते हुए तथा महिलाओं, निर्बल वर्गों, प्रौढ़ों आदि की शैक्षिक आवश्यकताओं को भी दृष्टि पथ में रखते हुए, शिक्षा के क्षेत्र में नये विचारों नयी प्रवृत्तियों, खोजों, तथा अभिनव शिक्षण विधियों को ध्यान में रखते हुए शिक्षक-शिक्षा में परिवर्तन, परिवर्द्धन और संशोधन आवश्यक हो गया है।

आधार पत्रक का सारांश प्रस्तुत करते हुए उन्होंने देश में शिक्षक शिक्षा का सूत्रपात और विस्तार, स्वतंत्रता पूर्व की स्थिति, स्वतंत्र भारत में इसके सुधार के लिए किये गये प्रयास को विवेचित करते हुए पूर्व प्राथमिक, प्राथमिक और उच्च प्राथमिक, माध्यमिक स्तरीय शिक्षक शिक्षा के वर्तमान कार्यकलापों पर प्रकाश डाला। वर्तमान राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में शिक्षक शिक्षा की चुनौतियों की चर्चा करते हुए उन्होंने जनसंख्या और प्रत्याशा विस्फोट, मूल्यों का संकट और आधुनिकीकरण को विशेष रूप से रेखांकित किया। शिक्षक-शिक्षा में सुधार के लिए उन्होंने, उद्देश्यों में परिवर्तन, शिक्षक-शिक्षा की राष्ट्रीय व्यवस्था, प्रशिक्षण संस्थाओं का स्वतंत्र अस्तित्व, न्यूनतम भौतिक एवं मानवीय संसाधनों की पूर्ति, चयन में एकरूपता, समयबद्धता, आवश्यकता आधारित प्रशिक्षण, पाठ्यक्रमों का आधुनिकीकरण, सेवाकालीन सतत प्रशिक्षण के महत्वपूर्ण विन्दु संगोष्ठी के विचार्थ प्रस्तुत किये।

मार्गदर्शक वक्तव्य :

मुख्य अतिथि के रूप में यूनेस्को विशेषज्ञ डॉ० एस० एन० उपाध्याय ने अपने वक्तव्य में इस बात पर प्रसन्नता प्रगट की कि उनकी मातृ प्रशिक्षण संस्था द्वारा शिक्षक शिक्षा पर नयी दृष्टि से विचार करने के लिए इस महत्वपूर्ण संगोष्ठी का आयोजन किया गया। शिक्षा और शिक्षक के इतिहास पर दृष्टिपात करते हुए उन्होंने कहा कि आधुनिक युग के आगमन के पूर्व तक शिक्षा का संबंध दर्शन के साथ रहा और दार्शनिक ही शिक्षा की सम्पूर्ण गतिविधियों के सिद्धान्त प्रतिपादित करता था। आधुनिक युग में शिक्षा में विज्ञान, टेकनालाजी तथा आर्थिक सिद्धान्तों के समावेश से शिक्षा के लक्ष्यों और अध्यापक के कार्यों में व्यापक अन्तर हो गया। उन्होंने इस बात पर चिन्ता प्रगट की कि आधुनिक युग में शिक्षण का कार्य 'स्वान्तः सुखाय' न होकर एक मशीन की तरह किया जाने लगा है।

शिक्षक-शिक्षा पर अपने विचार प्रकट करते हुए उन्होंने कहा कि इसके सम्बन्ध में दो प्रकार की धारणाएँ प्रचलित हैं। एक सिद्धान्त के अनुसार शिक्षक को अपने विषय का पूर्ण ज्ञाता भर होना चाहिए, अगर शिक्षक विषय को भली भाँति जानता है तो वह उसे अच्छी तरह से पढ़ा लेगा। दूसरी धारणा के अनुसार शिक्षक को विषय पढ़ाने के लिए विधियों का जानना आवश्यक है। उन्होंने अपने विस्तृत विवेचन में इस बात पर बल दिया कि आज के शिक्षक को दोनों में समन्वय करके चलना है। शिक्षण के आधुनिक उपकरणों की चर्चा करते हुए उन्होंने आग्रह किया कि हमें भारतीय परिवेश में स्वयं अपने शिक्षण उपकरणों और विधियों को विकसित करना चाहिए तथा शिक्षा की नयी-नयी जानकारियों से भी अवगत रहना चाहिए।

अपने देश-विदेश के अनुभवों तथा संस्मरणों को सुनाते हुए उन्होंने कहा कि संसार के सभ्य देशों में शिक्षा के क्षेत्र में आज भी भारत वर्ष का बड़ा आदर है। शिक्षा में कोई भी परिवर्तन करते समय दूसरों की अन्धी नकल ठीक नहीं होगी। जर्मनी का उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा कि आज भी जर्मनी अपने शिक्षा सिद्धान्तों और अध्यापकों को श्रेष्ठ मानता है, किसी बाहरी देश के व्यक्ति को अपने यहाँ अध्यापक नहीं रखता। हमें भी अपने गर्व और गौरव को नहीं भूलना चाहिए।

अपने वक्तव्य के अन्त में उन्होंने इस बात पर बल दिया कि माँग के अनुसार ही शिक्षकों को प्रशिक्षित किया जाय। प्रशिक्षण के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए उन्होंने अस्तरीय प्रशिक्षण संस्थाओं को समाप्त करके स्तरीय प्रशिक्षण संस्थाओं को और भी आधुनिक शैक्षणिक, भौतिक तथा मानवीय सुविधाओं से सुसज्जित करने का आग्रह किया। विद्वत् संगोष्ठी शिक्षक-शिक्षा में सुधार के कुछ कारगर निर्णय प्राप्त करे, इस आशा के साथ उन्होंने इसका उद्घाटन घोषित किया।

अध्यक्षीय वक्तव्य :

डॉ० विद्या सागर मिश्र, अध्यक्ष, शिक्षा संकाय गोरखपुर विश्वविद्यालय ने उक्त अवसर पर अपने अध्यक्षीय वक्तव्य में इस बात पर हर्ष प्रगट किया कि देश और प्रदेश स्तर पर शिक्षक-शिक्षा की गिरती हुई दीवालों को थाम्हने के लिए किसी प्रशिक्षण संस्थान द्वारा इस ऐतिहासिक रूप में प्रथम महत्वपूर्ण सम्मेलन आयोजित किया गया जिसने शिक्षक-शिक्षा के प्रत्येक स्तर से जुड़े अनुभवी शिक्षाविदों को मिल बैठकर विचार-विमर्श करने का अवसर प्रदान किया।

शिक्षक-शिक्षा के वर्तमान स्वरूप पर विचार करते हुए साम्प्रतिक परिप्रेक्ष्य में उन्होंने इसे दिशाहीन बताया। उन्होंने राष्ट्रीय और प्रान्तीय स्तर पर इसकी स्वतंत्रता और स्वायत्तता पर विचार करने की प्रेरणा दी। शिक्षक-शिक्षा में प्रवेशार्थियों की चयन पद्धति तथा उसके सैद्धान्तिक और क्रियात्मक पक्षों की चर्चा करते हुए उन्होंने इसमें भावात्मक पक्ष को और अधिक महत्व देने पर बल दिया। वर्तमान में शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं की व्यवसायपरक दृष्टि पर चिन्ता प्रगट करते हुए इस दिशा में सुधार की अपेक्षा की। उन्होंने कहा कि चयनपद्धति की विसंगतियों के कारण नामांकन बहुत विलम्ब से होता है और कभी-कभी तो तीन-चार महीने में ही हम इन्हें शिक्षक बना देते हैं। अच्छी योग्यता वाले और सुरुचि सम्पन्न लोगों को शिक्षण-कार्य की ओर आकर्षित करने के उपायों पर भी विचार करने का उन्होंने आग्रह किया।

डॉ० मिश्र ने अपेक्षा प्रगट की कि प्रशिक्षणकाल में ही भावी शिक्षकों को अपनी आदर्श पहचान की अंतर्दृष्टि मिल जानी चाहिए। सामूहिक और सामुदायिक पक्ष के विकास की आवश्यकता बताते हुए उन्होंने प्रशिक्षणार्थियों के सामाजिक क्रियाशीलनों में प्रतिभाग को आवश्यक बताया। उन्होंने कहा कि शिक्षा की व्यावसायिक गतिविधियों से परिचित कराने के लिए प्रशिक्षण अवधि में विस्तार आवश्यक है और प्रत्येक प्रशिक्षणार्थी को कम से कम छः माह की 'इन्टर्नशिप' अवश्य करनी चाहिए।

अभिलेखन :

प्रो० एस० के० गुप्त, क्षेत्रीय सलाहकार एन० सी० ई० आर० टी० नयी दिल्ली ने उक्त अवसर पर अपने गहन विचार देते हुए कहा कि आज के युग में शिक्षा में बड़ी तेजी से परिवर्तन हो रहे हैं, नित्य नये-नये विचार आ रहे हैं। इनका प्रयोग हमें अवश्य करना चाहिए। उन्होंने कहा कि अब शिक्षक के लिए क्या

पढ़ाया जाय की अपेक्षा कैसे पढ़ाया जाय, अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। अपने देश की समीक्षा करते हुए उन्होंने कहा कि हमारे सामने शिक्षा के गुणात्मक विकास के साथ ही उसके सार्वजनीकरण की कठिन समस्या है। इस क्षेत्र में पर्याप्त शोध और प्रयोग में बल देते हुए शिक्षा के माध्यम से अशिक्षित आदिवासियों, निर्बल-वर्गों, महिलाओं तथा प्रौढ़ों को भी राष्ट्र की मुख्य धारा में ले आने की अपील की। उन्होंने प्रारम्भिक स्तरीय शिक्षक-शिक्षा के सेवापूर्व और सेवारत प्रशिक्षण को और अधिक सुनियोजित, समसामयिक तथा व्यवहारपरक बनाने पर बल दिया। संस्थान के प्राध्यापक श्री गोपाल कृष्ण मिश्र के धन्यवाद ज्ञापन के पश्चात् उद्घाटन सत्र समाप्त हुआ।

21-9-92 द्वितीय सत्र : पत्रक प्रस्तुति

अध्यक्ष—डॉ० सुरेश चन्द्र जैन, प्रोफेसर, रीजनल ट्रेनिंग कालेज, अजमेर

द्वितीय सत्र के आरम्भ में अध्यक्ष डॉ० जैन ने यह प्रस्ताव रखा कि इस सत्र के विचार-विमर्श का दायरा निश्चित कर लिया जाय। विशेषज्ञों ने सर्वसम्मत अभिमत प्रगट किया कि इस सत्र में जिन्हें निर्धारित विषय पर जो कुछ कहना हो, पत्रक प्रस्तुत करना हो, उसे कर लिया जाय जिससे वैचारिक समन्विति के साथ आगे के प्रश्नों पर विचार करने में सुविधा हो।

स्थिति पत्रक—उत्तर प्रदेश : श्री श्याम नारायण राय, प्राचार्य

सर्व प्रथम संस्थान के प्राचार्य श्री राय ने संस्थान द्वारा तैयार शिक्षक-शिक्षा के स्थिति पत्रक का सार संक्षेप प्रस्तुत किया। उन्होंने प्रदेश के वर्तमान सन्दर्भ में शिक्षक-शिक्षा की गुरुतर भूमिका को ध्यान में रखते हुए उसके विकास और संवर्द्धन पर बल दिया। उन्होंने उत्तर प्रदेश में शिक्षक शिक्षा के विकास और विस्तार तथा समय-समय पर हुए परिवर्तनों की समीक्षा करते हुए कहा कि सम्प्रति उत्तर प्रदेश में पूर्व प्राथमिक प्रशिक्षण विद्यालय, प्राथमिक प्रशिक्षण विद्यालय, माध्यमिक शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाएँ, अन्य विशिष्ट प्रशिक्षण संस्थाएँ, जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान, राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् आदि शिक्षक-शिक्षा के क्षेत्र में सक्रिय हैं।

सेवापूर्व एवं सेवारत प्रशिक्षण की समीक्षा करते हुए उन्होंने कहा कि प्रारम्भिक स्तर पर जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना के बाद भी पाठ्यक्रमों का आधुनिकीकरण नहीं हो सका है। माध्यमिक स्तर की शिक्षक-शिक्षा के प्रबन्ध और व्यवस्था में एकरूपता का अभाव है। सुधार के उपायों पर दृष्टिपात करते हुए उन्होंने विचार व्यक्त किया कि शिक्षक-शिक्षा को एक राज्य स्तरीय क्रम की आवश्यकता है। उन्होंने 'स्टेट कौंसिल फार टीचर एजूकेशन' की स्थापना का सुझाव दिया। महाविद्यालयों से सम्बद्ध शिक्षक-शिक्षा विभागों तथा विश्वविद्यालयों के शिक्षा संकायों के स्वतन्त्र अस्तित्व का भी प्रश्न उठाया। शिक्षक-शिक्षा संस्थाओं की

प्रबन्ध व्यवस्था, शिक्षक-प्रशिक्षकों की योग्यता और सुविधा, आवश्यक संसाधनों की पूर्ति तथा पाठ्यक्रमों का आधुनिकीकरण और उनके प्रभावी क्रियान्वयन की ओर ध्यानाकर्षण किया।

विचार पत्रक—नर्सरी प्रशिक्षण : श्रीमती किरणबाला पाण्डेय, प्राचार्या—
राज्य शिशु प्रशिक्षण महिला महाविद्यालय, इलाहाबाद

श्रीमती पाण्डेय ने अपने विचार पत्रक में शिशु शिक्षा के महत्व को प्रतिपादित करते हुए शिशु प्रशिक्षण महाविद्यालयों के उच्चीकरण की ओर ध्यानाकर्षण किया। उन्होंने शिशु शिक्षक-शिक्षा के पाठ्यक्रम के पुनरीक्षण पर बल देते हुए यह माँग की शिशु शिक्षा तथा प्रारम्भिक विद्यालयों, आँगनबाड़ी, बालबाड़ी में नर्सरी शिक्षक-शिक्षा प्राप्त अध्यापिकाओं की नियुक्ति की जाय। व्यावसायिक शिक्षा के अन्तर्गत माध्यमिक विद्यालयों द्वारा संचालित नर्सरी ट्रेड्स में इन प्रशिक्षित अध्यापिकाओं को वरीयता प्रदान करने की माँग की।

उन्होंने शिशु नर्सरी प्रशिक्षण महाविद्यालयों के सुधार की माँग करते हुए कहा कि प्रदेश में शिशु शिक्षा के विकास के लिए पर्याप्त शोध और सुविधाओं की आवश्यकता है। इसके लिए शिशु शिक्षा-प्रशिक्षण महाविद्यालयों के साथ एक शोध प्रकोष्ठ भी संलग्न होना चाहिए। शिशु साहित्य की रचना, शैक्षिक खेलोपकरणों के निर्माण, शिशु विकास के विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित दृश्य श्रव्य सामग्री की रचना, समय-समय पर पुनर्बोधात्मक प्रशिक्षणों का आयोजन, सम्पूर्ण प्रदेश में संचालित शिशु शिक्षा केन्द्रों और शिक्षक शिक्षा केन्द्रों में एकरूपता की स्थापना आदि दिशाओं में भी विचार करने के लिए विद्वत् संगोष्ठी से अपील की।

विचार-प्रस्तुति : डॉ० विद्यासागर मिश्र, अध्यक्ष—शिक्षा संकाय, गोरखपुर विश्वविद्यालय

उक्त विचार पत्रक पर अपनी प्रतिक्रिया प्रगट करते हुए डॉ० मिश्र ने कहा कि प्रदेश में शिशु-शिक्षा की दशा बड़ी ही दयनीय है और शिशु शिक्षक-शिक्षा का तो कोई प्रारूप ही नहीं बना है। आज नर्सरी विद्यालयों की संख्या बढ़ती जा रही है, लोगों में अपने बच्चों को योग्य से योग्य बनाने की होड़ लगी हैं लेकिन ये नर्सरी विद्यालय बड़े ही अमनोवैज्ञानिक ढंग से व्यावसायिक रूप में चलाये जा रहे हैं और इनमें पढ़ाने वाली अधिकांश अध्यापिकाएँ अप्रशिक्षित हैं। उन्हें न तो शिशु व्यवहार को दिशा देने का पता होता है न ही शिक्षण की आधुनिक रोचक विधियों का ही ज्ञान होता है। वे छात्र-छात्राओं में भय का वातावरण उत्पन्न करके उनके बालमन को कुण्ठित कर देती हैं। इस स्तर पर शिक्षक-शिक्षा में आमूलचूल परिवर्तन करने पर उन्होंने विचार करने की प्रेरणा दी।

विचार प्रस्तुति : डॉ० सुरेश चन्द्र जैन, रीडर, क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, अजमेर

राजस्थान में प्रचलित शिक्षक-शिक्षा की चर्चा करते हुए डॉ० जैन ने कहा कि स्वतन्त्रता के बाद इस क्षेत्र में बड़ी प्रगति हुई हैं। पहले अन्य प्रान्तों के शिक्षक यहाँ कार्य करते थे। अब राजस्थान इस दिशा में स्वावलम्बी हो गया है।

उन्होंने कहा कि प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में स्विटजरलैण्ड के सहयोग से शिक्षकों के स्तर उन्नयन की योजना परिचालित की जा रही है। इसके अन्तर्गत गाँव में एक एजूकेशनल सोसाइटी बनायी जा रही है जो अपनी शैक्षिक

व्यवस्था का स्वयं नियोजन करेगी और सुविधाओं की भी व्यवस्था करेगी तथा दो-तीन वर्षों की शिक्षाकर्मी योजना चलाने के बाद उसी गाँव के व्यक्ति को शिक्षक बनाया जायगा। न्यूनतम अधिगम संप्राप्ति की दिशा में भी प्रयास चल रहे हैं।

उन्होंने बताया कि प्रारम्भिक शिक्षा के सर्वतोभावेन विकास और उन्नयन के लिए जिला और प्रशिक्षण संस्थान कार्य कर रहे हैं। माध्यमिक शिक्षक-शिक्षा में बी. ए. बी-एड. तथा बी. एस-सी. बी-एड., दो प्रकार के पाठ्यक्रम चलाये जाते हैं। बी. एस. सी., बी. एड. का पाठ्यक्रम चार वर्ष का निर्धारित किया गया है। उन्होंने बताया कि राजस्थान में एक रीजनल कालेज आफ एजूकेशन, अजमेर, में स्थित हैं। यहाँ प्रशिक्षित शिक्षकों की बेकारी अन्य प्रदेशों की अपेक्षा बहुत कम है। उच्च शिक्षा प्राप्ति एम. एड. पाठ्यक्रम भी संचालित किया जाता है।

'परसनलाइज्ड टीचर एजूकेशन' : डॉ० छाया गुप्ता, शिक्षा संस्थान, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर

देवी अहिल्या विश्वविद्यालय शिक्षा संस्थान की रीडर डॉ० छाया गुप्ता ने 'वैयक्तीकृत शिक्षक शिक्षा' पर अपना पत्रक प्रस्तुत करते हुए कहा कि हमने परम्परा से भिन्न शिक्षक शिक्षा की एक अन्य विधि का प्रयोग आरम्भ किया है जिससे हमारा भावी शिक्षक युगानुरूप अपने दायित्वों का निर्वाह कर सके, शिक्षार्थियों को प्रेरणा दे सके, उनके सीखने में रचनात्मकता और सृजनात्मकता का समावेश कर सके, सीखने की उचित परिस्थितियों का निर्माण कर सके और लोकतांत्रिक नेतृत्व प्रदान कर सके।

उक्त उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए 1991 से शिक्षक-शिक्षा में व्यापक परिवर्तन करके उसे प्रशिक्षु केन्द्रित और वैयक्तीकृत बनाया जा रहा है। इस प्रशिक्षण की रूपरेखा स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि इसके अन्तर्गत प्रशिक्षणार्थियों पर कोई प्रतिबन्ध या दबाव नहीं डाला जाता, वे स्वतंत्रतापूर्वक शिक्षण की सारी क्रियाओं का स्वयं आयोजन और संचालन करते हैं, अपने लिए रुचिकर एवं उपयोगी क्रियाशीलनों का चयन करते हैं तथा शिक्षक प्रशिक्षक पृष्ठभूमि में रहकर उनके कार्यों का प्रेक्षण करता है और अपेक्षित सहयोग करता है। इसके अन्तर्गत शिक्षक-प्रशिक्षकों को भी यह स्वतंत्रता प्राप्त होती है कि वे समय सारिणी, अधिगम व्यूह की रचना कर सकें और कुछ सीमा तक पाठ्यक्रम में भी अपने अनुसार परिवर्तन कर सकें।

इस अभिनव प्रयोग की विशेषताओं की विवेचना करते हुए डॉ० गुप्ता ने बताया कि इसमें व्याख्यान पद्धति तथा शिक्षक-प्रशिक्षक की केन्द्रीयता के बजाय क्रियात्मक एवं रचनात्मक कार्यों एवं छात्राध्यापकों की चयन रुचियों को विशेष महत्व दिया जाता है। इसमें समय तथा वादन का कोई प्रतिबन्ध नहीं होता। समूह अथवा वैयक्तिक अनुदेशन और 'पीयर ग्रुप' शिक्षण को विशेष महत्व दिया जाता है। छात्राध्यापकों में गोष्ठियों वाद-विवाद, तर्क-वितर्क आदि के माध्यम से स्वतः सीखने की परिस्थितियाँ उत्पन्न की जाती हैं। छात्राध्यापकों

को यह छूट रहती है कि वे किस कार्यक्रम में जायँ। इस प्रकार शिक्षक-शिक्षा के क्षेत्र में प्रशिक्षु केन्द्रित वैयक्तीकृत शिक्षक-शिक्षा का एक अभिनव प्रयोग संचालित किया जा रहा है।

पत्रक प्रस्तुति : डॉ० सरला पाण्डेय, रीडर, शिक्षा संकाय, काशी विद्यापीठ, वाराणसी

डॉ० पाण्डेय ने उक्त अवसर पर 'टीचर एजूकेशन : ए पर्सपेक्टव व्यू' पर अपना पत्रक विद्वत गोष्ठी के समक्ष प्रस्तुत करते हुए कहा कि शिक्षा की सम्पूर्ण व्यवस्था आज कुशल और योग्य शिक्षकों के अभाव में चरमरा रही है। समय की चुनौतियों को देखते हुए और भावी समाज को देखते हुए शिक्षक शिक्षा में व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता है।

अपने अनुसार परिवर्तन की दिशाओं का उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा कि शिक्षक प्रशिक्षण को अधिकाधिक कार्य और व्यवहारपरक बनाया जाय और इसे छात्राध्यापक केन्द्रित किया जाय। शिक्षक-शिक्षा का पाठ्यक्रम क्रिया केन्द्रित और कौशल केन्द्रित होना चाहिए। प्रशिक्षण महाविद्यालयों में कक्षा शिक्षण अभ्यास को विविधता और पर्याप्तता मिलनी चाहिए। उन्होंने भावी शिक्षकों में सामुदायिक भावना के विकास के लिए पाठ्यक्रम में परिवर्तन का प्रश्न उठाया और शिक्षक-शिक्षा में इस पर और अधिक बल देने की बात कही। आधुनिक शैक्षणिक उपकरणों की उपलब्धता और प्रयोग के प्रति भी उन्होंने संगोष्ठी का ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने विश्वविद्यालयों के शिक्षा विभागों, प्रशिक्षण महाविद्यालयों और विद्यालयों को और अधिक समीप ले आने की आवश्यकता बतायी तथा अपेक्षा प्रगट की कि शिक्षक-शिक्षा में परिवर्तन करते समय विश्व क्षितिज में हो रहे परिवर्तनों का भी ध्यान रखना होगा।

विचार पत्रक प्रस्तुति : डॉ० वी० के० राय, प्रवक्ता, शिक्षा विभाग, पोस्ट ग्रेजूएट कालेज, सन्डेसर, आजमगढ़।

अपने पत्रक में डॉ० राय ने शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं से सम्बद्ध अभ्यास विद्यालयों (Practicing Schools) की समस्याओं की ओर ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने कहा कि शिक्षक प्रशिक्षण में शिक्षण अभ्यास के लिए अधिकांश के पास अपने अभ्यास विद्यालय नहीं हैं। अतः प्रशिक्षण अभ्यास के लिए प्रशिक्षणार्थियों को पास-पड़ोस के विद्यालयों में भेजना पड़ता है। ये विद्यालय प्रशिक्षण महाविद्यालयों को पूरा सहयोग नहीं प्रदान करते और कभी-कभी तो कार्य सम्पादन में बाधा उत्पन्न करते हैं। प्रशिक्षण संस्थाओं और अभ्यास-विद्यालयों को और अधिक पास-पास लाने के लिए कुछ सुझाव देते हुए उन्होंने प्रतिभागी सदस्यों से इस विषय पर भी विचारपूर्वक निर्णय लेने का आग्रह किया।

इस प्रकार प्रथम दिवस के द्वितीय सत्र में शिक्षक-शिक्षा के स्थिति पत्रक के साथ ही विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार पत्रकों और मन्तव्यों की प्रस्तुति की गयी।

22-9-92 तृतीय सत्र : विचार-मन्थन

डॉ० रवि गोपाल उपाध्याय, विभागाध्यक्ष—राजकीय रजा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर की अध्यक्षता में तृतीय सत्र का शुभारम्भ संस्थान के सभागार में प्रातः 10 बजे से हुआ। आरम्भ में डॉ० उपाध्याय ने विचाराभिव्यक्ति के लिए शेष सदस्यों का आह्वान किया और उनसे अपेक्षा की कि संस्थान द्वारा अपने पत्रक में उठाये गये मुद्दों पर अथवा उनसे सम्बन्धित विषयों पर ही अपने विचारों को केन्द्रित करें जिससे संगोष्ठी द्वारा कुछ ठोस निष्कर्षों की प्राप्ति हो सके।

आरम्भ में श्री दुर्गा जी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चन्डेसर, आजमगढ़ के प्रवक्ता डॉ० विनोद कुमार राय ने शिक्षक-शिक्षा में प्रवेश की समस्या उठायी। उन्होंने कहा कि प्रवेश हेतु कोई कार्यक्रम समयबद्ध रूप से सम्पादित नहीं होता। सूची बहुत विलम्ब से निकलती है जिससे समय की कमी के कारण निर्धारित पाठ्यक्रम पूरा नहीं हो पाता। प्रशिक्षण संस्थाओं के साथ अभ्यास विद्यालय का न होना शिक्षक-शिक्षा के उत्कर्ष में बाधक हैं। परीक्षा पद्धति तथा मूल्यांकन की दुर्व्यवस्था की चर्चा करते हुए उन्होंने इसमें सुधारात्मक कदम उठाने पर बल दिया।

उक्त कथन पर अध्यक्ष डॉ० उपाध्याय ने कहा कि शासकीय महाविद्यालयों में प्रवेश की तिथि 16 जुलाई निश्चित है और परीक्षा की तिथियाँ भी निश्चित हैं किन्तु अशासकीय प्रशिक्षण महाविद्यालयों में ऐसी स्थिति नहीं है। उन्होने इस समस्या के निदान हेतु शासकीय, अशासकीय तथा एल० टी० के प्रवेश, परीक्षा और परीक्षाफल प्रकाशन की तिथियों में एकरूपता स्थापित करने की सलाह दी। उन्होंने प्रशिक्षण अवधि पूर्ण होने के बाद ही परीक्षा लेने की बात की।

संगोष्ठी के विचार क्रम को बढ़ाते हुए संस्थान के प्राचार्य श्री राय ने कहा कि अब समय की माँग है कि शिक्षक प्रशिक्षण को प्रदेश के दायरे से बाहर निकाल कर इसे राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में देखा जाय। शैक्षिक स्तरों में राष्ट्रव्यापी समानता के लिए शिक्षक-शिक्षा में राष्ट्रीय एकरूपता का होना आवश्यक है। टुकड़ों-टुकड़ों में शिक्षक-शिक्षा में सुधार या विकास की उपयोगिता संदिग्ध है।

डी० ए० वी० ट्रेनिंग कालेज कानपुर के प्राचार्य श्री के० पी० शुक्ल ने शिक्षक-शिक्षा के उत्कर्ष में शिक्षक-प्रशिक्षकों की दयनीय स्थिति और अशासकीय प्रशिक्षण महाविद्यालयों की संसाधनहीनता की ओर विद्वान विचारकों का ध्यान आकृष्ट किया। उन्होंने कहा कि परिस्थितियाँ ही ऐसी हैं कि हम चाहते हुए भी अच्छा प्रशिक्षण नहीं दे सकते। न बैठने की पर्याप्त जगह, न खेल का मैदान, न छात्रावास और न ही शिक्षक-प्रशिक्षकों को उचित सुविधाएँ उपलब्ध हैं कि वे मन लगाकर काम कर सकें। उन्होंने इन वास्तविकताओं पर भी ध्यान देने का आग्रह किया।

संस्थान के प्रवक्ता श्री दुर्गा प्रसाद द्विवेदी ने कहा कि वर्तमान शिक्षक-शिक्षा का ढाँचा पराधीनता काल में बना था; आज की भारतीय परिस्थितियों में उस पर पुनर्विचार होना चाहिए। उन्होंने वर्तमान पाठ्यक्रम

और उसके क्रियान्वयन पद्धति की समीक्षा करते हुए कहा कि शिक्षित और प्रशिक्षित व्यक्ति के कार्य और व्यवहार में विशेष अन्तर होना चाहिए। शिक्षक-प्रशिक्षकों की गुणवत्ता का आग्रह करते हुए उन्होंने प्रशिक्षण महाविद्यालयों को आवासीय बनाने पर बल दिया। प्रशिक्षण के अन्तर्गत शिक्षकीय अभिवृत्ति के विकास के लिए उन्होंने परम्परागत आश्रम पद्धति के प्रशिक्षण महाविद्यालयों की स्थापना पर भी बल दिया। शिक्षक-प्रशिक्षण की कार्यविधि में परिवर्तन की दिशाओं का उल्लेख करती हुई डॉ० छाया गुप्ता, शिक्षा संस्थान देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर ने कहा कि शिक्षक प्रशिक्षण में परम्परागत व्याख्यान पद्धति को छोड़ना पड़ेगा और इसे अधिक से अधिक क्रियात्मक और सृजनात्मक बनाना होगा जिससे प्रशिक्षणार्थी स्वयं सीख सकें और स्वयं कर सकें। उन्होंने पाठ्यक्रम को नमनीय बनाने पर बल दिया। प्रशिक्षण के लिए उन्होंने सेमिनार आयोजन, कार्यशाला आयोजन, विचार-विमर्श, वाद-विवाद, चर्चा-परिचर्चा द्वारा शिक्षकीय कार्य और व्यवहार के विकास पर बल दिया। उन्होंने कहा कि दायित्वों के सिद्धान्त पढ़ाने से अधिक अच्छा प्रशिक्षणार्थियों को उन दायित्वों को सौंप देना होता है। प्रशिक्षण के अन्तर्गत प्रशिक्षणार्थी को विद्यालय में सम्पादित होने वाली सभी क्रियाओं का व्यावहारिक कौशल मिल जाना चाहिए।

डॉ० छाया गुप्ता के उक्त कथन पर प्रतिक्रिया प्रगट करते हुए चन्डेसर प्रशिक्षण महाविद्यालय, आजमगढ़ के प्रवक्ता डॉ० राय ने कहा कि इन्दौर का शिक्षा संस्थान एक प्रकार से स्वायत्तता प्राप्त है और उसके पास समस्त सुविधाएँ हैं। वे जैसा प्रयोग चाहें कर सकते हैं। हमें तो अपनी परिस्थितियों में ही सोचना और निर्णय लेना है।

गोरखपुर विश्वविद्यालय के शिक्षा संकाय के अध्यक्ष डॉ० विद्यासागर मिश्र ने अपने विचार प्रगट करते हुए कहा कि शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं का मूलभूत दायित्व कुशल और अच्छे शिक्षकों को जन्म देना है। एक अच्छे शिक्षक में किन-किन गुणों की आज आवश्यकता है, उसको रेखांकित करते हुए उन्होंने कहा कि प्रथमतः शिक्षक को अपने विषय का पूर्ण ज्ञाता होना चाहिए। उसमें ज्ञात विषय वस्तु को अभिव्यक्त करने की कुशलता भी होनी चाहिए। तीसरे गुण पर विशेष बल देते हुए उन्होंने कहा कि शिक्षक में चारित्रिक गुण सन्निहित होना चाहिए तभी वह अपने छात्रों को बुराइयों से बचा सकेगा। शिक्षक-शिक्षा में परिवर्तन करते समय इस मानवीय पक्ष को अवश्य दृष्टिगत रखना चाहिए।

डॉ० एम० सी० शर्मा, शिक्षा विभागाध्यक्ष—बलवन्त राजपूत कालेज आगरा ने शिक्षक-शिक्षा के अनेक आयामों पर दृष्टिपात किया। उन्होंने कहा कि प्रवेश परीक्षा और प्रवेश सूची की निर्गत सीमा निश्चित होनी चाहिए। उन्होंने कहा कि एक सत्रीय पाठ्यक्रम में प्रत्येक स्थिति में जून तक परीक्षा और प्रवेश सूची का कार्य हो जाना चाहिए और जुलाई में प्रवेश समाप्त हो जाना चाहिए। उन्होंने केवल आर्थिक दृष्टि से चलायी जा रही प्रशिक्षण संस्थाओं की आलोचना की और कहा कि इनके कारण स्तर गिरा है। उन्होंने कहा कि यह 'प्रोफेशनल कोर्स' है, इसे सामान्य शिक्षा महाविद्यालयों से भिन्न और अलग होना चाहिए और ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए कि प्रशिक्षणार्थी अधिकांश समय तक प्रशिक्षण संस्था में ही रहें। उन्होंने शिक्षक प्रशिक्षकों के स्तर और कार्य और व्यवहार में गिरावट की आलोचना की और कहा योग्यतम और शिक्षा तथा शिक्षण के प्रति समर्पित व्यक्तियों को ही शिक्षक-प्रशिक्षक बनाना चाहिए। परीक्षा और मूल्यांकन पद्धति में एकरूपता

स्थापित करने पर विचार करने की आवश्यकता का प्रश्न उठाया तथा क्रियात्मक कार्यों में बाह्य परीक्षक के साथ आन्तरिक परीक्षक होना भी अनिवार्य बताया। अन्त में उन्होंने अपने उद्‌गारों को इन शब्दों में बाँधते हुए बन्द किया कि शिक्षक-प्रशिक्षण महाविद्यालयों का ऐसा कोई सार्थक संगठन बनाना चाहिए जिसके माध्यम से हम अपनी समस्याओं पर विचार-विमर्श करके निर्णय ले सकें।

काशी विद्यापीठ के शिक्षा विभाग की रीडर डॉ० सरला पाण्डेय ने शिक्षक-शिक्षा में गुणात्मक सुधार के लिए शिक्षक-प्रशिक्षकों के सुधार और परिष्कार पर विशेष बल दिया। प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में प्रवेश के लिए सी० पी० एम० टी० की परीक्षा की तरह एक साथ, एक जगह से ही संचालित करने का सुझाव दिया। उन्होंने कहा कि यदि प्रशिक्षण में किसी प्रकार छः माह का 'इण्टर्नशिप' जोड़ दिया जाय तो इसकी कुशलता और व्यावहारिकता तथा उपादेयता में अभिवृद्धि होगी।

सत्र के अन्तिम वक्ता के रूप में कालाकाँकर पोस्ट ग्रेजुएट ट्रेनिंग कालेज, प्रतापगढ़ के शिक्षा विभाग के अध्यक्ष डॉ० हरवंश सिंह ने मूल प्रकरण शिक्षक-शिक्षा के नये आयाम की ओर संगोष्ठी का ध्यान आकर्षित करते हुए उन्होंने इसके कई पहलुओं पर महत्वपूर्ण विचार दिये। उन्होंने कहा कि शिक्षक-शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भौतिक और मानवीय, दो प्रकार के संसाधनों की आवश्यकता होती है। अगर प्रशिक्षण संस्थाएँ मानवीय संसाधनों की दृष्टि से समृद्ध हों तो भौतिक संसाधनों का अभाव नहीं होने पाता। वर्तमान मानवीय संसाधनों की उत्कृष्टता पर उन्होंने अधिक बल देते हुए कहा कि आज अधिकांश शिक्षक प्रशिक्षक ही यह नहीं जानते हैं कि वे किस लिए प्रशिक्षण दे रहे हैं। उन्होंने भावी शिक्षक के आदर्श चरित्र और समय के अनुकूल अभिवृत्ति निर्माण को रेखांकित किया। उन्होंने कहा कि यांत्रिक शिक्षक अच्छा अध्यापक नहीं बन सकता, उसमें मानवीय गुणों का समावेश होना चाहिए, सांस्कृतिक और सामाजिक चेतना की भी समझ होनी चाहिए।

डॉ० सिंह ने सुझाव दिया कि शिक्षक प्रशिक्षक संस्थाओं को स्वायत्तशासी संस्थाओं के रूप में विकसित करना चाहिए जिससे वे अपनी क्षमता एवं आवश्यकता के अनुसार पाठ्यक्रम निर्माण, प्रवेश, परीक्षा सम्पादन का कार्य कर सकें। शिक्षक शिक्षा के आधुनिकीकरण पर बल देते हुए उन्होंने कहा कि हमारा समग्र प्रयास होना चाहिए कि हम प्रशिक्षणार्थी की आन्तरिक शक्तियों को अभिप्रेरित कर सकें और उसे इतना प्रगतिशील बना सकें कि वह विषम परिस्थितियों में भी अपने शिक्षण संसाधनों का विकास कर सकें। वर्तमान मूल्यांकन व्यवस्था की चर्चा करते हुए उन्होंने इसे और अधिक व्यापक बनाने पर बल दिया जिससे वास्तव में प्रशिक्षणार्थी के ज्ञान, अभिवृत्ति, कौशल, सामाजिक व्यवहार, मूल्य और विश्वास आदि का पता लगाया जा सके। सेवाकालीन प्रशिक्षण को भी प्रशिक्षण संस्थाओं के एक अंग के रूप में स्वीकार करने का भी उन्होंने प्रस्ताव रखा।

संगोष्ठी के विद्वान प्रतिभागियों ने एक-दूसरे की बातों को गम्भीरतापूर्वक सुना और दोपहर के एक बज जाने पर अध्यक्ष की आज्ञा से सत्रावसान घोषित हुआ।

22-9-92 चतुर्थ सत्र : निष्कर्षों की ओर

संस्थान के भूतपूर्व प्राचार्य एवं अनुभवी शिक्षाविद, श्री ए० एन० तिवारी की अध्यक्षता में अपराह्न 2 बजे चतुर्थ सत्र का आरम्भ हुआ। श्री तिवारी ने विभाग द्वारा प्रस्तुत आधार पत्रक में उठाये गये बिन्दुओं—शिक्षक-शिक्षा के उद्देश्यों में समसामयिक परिवर्तन, इसकी राष्ट्रीय व्यवस्था का स्वरूप, राष्ट्रीय स्तर पर सामान्य केन्द्रिक का निर्धारण, संस्थाओं की स्वायत्तता और भौतिक तथा मानवीय संसाधनों की पूर्ति, सेवापूर्व प्रशिक्षणार्थियों के चयन में राष्ट्रीय एकरूपता, प्रशिक्षुता प्रतिरूप का नियोजन, पाठ्यक्रम का आधुनिकीकरण, मूल्यांकन-सुधार, सेवारत शिक्षक-प्रशिक्षण का विस्तार आदि से सम्बन्धित प्रकरणों पर ही ध्यान केन्द्रित करने का आग्रह किया जिससे विचार-विमर्श के बाद किसी ठोस निर्णय तक पहुँचा जा सके।

उक्त कथन पर अपने विचार प्रगट करते हुए गोरखपुर विश्वविद्यालय के शिक्षा संकाय के अध्यक्ष डॉ० विद्यासागर मिश्र ने कहा कि प्रशिक्षण संस्थाओं की वर्तमान भौतिक और मानवीय स्थिति सन्तोषजनक नहीं है। उन्होंने इनके मानक सुनिश्चित करने पर बल दिया। उन्होंने सुझाव दिया कि शिक्षक-शिक्षा की व्यवस्था राष्ट्रीय स्तर पर न करके राज्य स्तर पर ही करना चाहिए। इसके लिए कोई राज्य केन्द्रीय अभिकरण होना चाहिए। प्रशिक्षण संस्थाओं की स्वायत्तता के सम्बन्ध में उनका विचार था कि यह उचित नहीं होगा, इसके स्थान पर प्रशिक्षण का न्यूनतम अधिगम स्तर निर्धारित होना चाहिए। पाठ्यक्रम का निर्माण अलग-अलग न होकर राज्य स्तर पर एक ही पाठ्यक्रम बनाया जाय। पाठ्यक्रम पुराने पड़ गये हैं, इनमें परिवर्तन अपेक्षित है। प्रशिक्षणार्थियों को गतार्थ सिद्धान्तों की बजाय शिक्षण और सीखने से सम्बन्धित बाते ही पढ़ायी जायँ। ज्ञान, अनुभूति और कौशल, तीनों को मूल्यांकन का आधार बनाया जाय। सतत शिक्षा की योजना बनायी जाय। माध्यमिक स्तर पर प्रशिक्षण की अवधि दो वर्ष की रखी जाय। उसमें से एक वर्ष 'कान्टेक्ट' कार्यक्रम के लिए निर्धारित किया जाय।

बलवन्त राजपूत कालेज, आगरा के शिक्षा विभागाध्यक्ष डॉ० शर्मा ने डॉ० मिश्र के कथन पर सहमति प्रगट करते हुए माध्यमिक प्रशिक्षण की अवधि दो वर्ष करने पर विशेष बल दिया। के० पी० ट्रेनिंग कालेज इला० के प्राचार्य श्री राजमोहन ने कहा कि एक कार्य करने वाली कई प्रकार की प्रशिक्षण संस्थाओं को समाप्त करके एक ही प्रकार की व्यवस्था संचालित होनी चाहिए। डी० ए० वी० ट्रेनिंग कालेज कानपुर के प्राचार्य श्री के० पी० शुक्ल ने कहा कि आज अच्छे विद्यार्थी अध्यापक नहीं बनना चाहते हैं। अतः शिक्षक के कार्य-व्यापार को आकर्षक बनाने की आवश्यकता हैं। प्रशिक्षण महाविद्यालयों में विषयानुसार योग्य प्रशिक्षकों की नियुक्ति होनी चाहिए। श्री बी० के० सक्सेना, प्राचार्य —जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान, उन्नाव ने अपना अभिमत व्यक्त करते हुए कहा कि शिक्षकों में शिक्षण की अभिवृत्ति उत्पन्न करना परमावश्यक है जिससे वह विद्यालय को अपने कर्म का मन्दिर समझें और नियमित रूप से मन लगाकर कक्षा में पढ़ायें।

डॉ० डी० एस० श्रीवास्तव, शिक्षा विभागाध्यक्ष, अँतर्रा डिग्री कालेज, बाँदा ने शिक्षक शिक्षा के अनेक पहलुओं पर विचार किया। उन्होंने कहा कि प्रवेश नियम में यह बात जोड़ दी जाय कि अभ्यर्थी का हाईस्कूल कक्षाओं में पढ़ाये जाने वाले दो विषय, अनिवार्य रूप से स्नातक स्तर पर होना चाहिए। प्रवेश परीक्षा में एप्टीट्यूट टेस्ट' के साथ 'व्यक्तित्व परीक्षण' को भी स्थान दिया जाय तथा साक्षात्कार भी सम्मिलित किया

जाय । प्रदेश स्तर पर एकरूपता लाने के लिए एक परीक्षा संस्था बनायी जाय । प्रशिक्षण अवधि दो वर्ष की होनी चाहिए तथा प्रशिक्षक और प्रशिक्षणार्थी का अनुपात 1:8 का होना चाहिए । प्रशिक्षण संस्थाओं को महाविद्यालयों से अलग किया जाय । प्रत्येक प्रशिक्षण संस्था के साथ माडल स्कूल अवश्य होना चाहिए तथा उसके सहयोगी विद्यालय भी सुनिश्चित होने चाहिए । शिक्षक शिक्षा के लिए चलायी जा रही पत्राचार शिक्षा की संस्थाओं को समाप्त कर देना चाहिए । शिक्षक-प्रशिक्षकों का भी समय-समय पर मूल्यांकन होना चाहिए, उन्हें अपने ज्ञान और अनुभव विस्तार के लिए अवसर और सुविधाएँ मिलनी चाहिए । सुयोग्य अभ्यर्थियों के चयन के लिए उन्होंने प्रवेश परीक्षा के पुनरीक्षण और अनुसंधान पर बल दिया ।

श्री वासुदेव यादव, प्राचार्य, जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान, सारनाथ, वाराणसी ने कहा कि आज सेवारत शिक्षकों को अनवरत प्रशिक्षण देने की आवश्यकता है । मानव शक्ति नियोजन पर बल देते हुए उन्होंने कहा कि आवश्यकतानुसार ही शिक्षकों का चयन करके प्रशिक्षण दिया जाय । प्रशिक्षण संस्थाओं के साथ अभ्यास विद्यालयों की अनिवार्यता पर उन्होंने भी बल दिया । श्रीमती किरनबाला पाण्डेय, प्राचार्या, नर्सरी प्रशिक्षण विद्यालय, इलाहाबाद ने कहा कि राज्य स्तर पर एक केन्द्रीय व्यवस्था होनी चाहिए जिसके माध्यम से शिक्षक-प्रशिक्षण के सभी स्तर की संस्थाएँ नियन्त्रित और संचालित हो सकें । महिला प्रशिक्षण महाविद्यालय इलाहाबाद की प्राचार्या । श्रीमती मिश्रा ने कहा कि शिक्षक-प्रशिक्षण का राष्ट्रीय स्तर पर 'कोरकरी क्यूलम' बनाया जाय और स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार उसमें अन्य विषय वस्तु जोड़ने की नमनीयता हो । उन्होंने प्रशिक्षणार्थियों के चयन में इस बात का ध्यान रखने की अपील की कि उनके स्नातक स्तर पर हाई-स्कूल स्तर के दो विषय अवश्य होने चाहिए । उन्होंने शिक्षक-प्रशिक्षण को पूर्णतः आवासीय बनाने पर बल दिया ।

एन० सी० ई० आर० टी० के क्षेत्रीय सलाहकार प्रो० एस० के० गुप्त ने अपने विचार प्रगट करते हुए कहा कि शिक्षक-शिक्षा में केन्द्र परिचालित योजनाओं के प्रति राज्यों में प्रतिबद्धता होनी चाहिए । उन्होंने शिशु शिक्षा पर विशेष बल देने की अपील की और समाज सेवी संस्थाओं को इधर आकर्षित करने की ओर सोचने के लिए कहा । उन्होंने शिक्षक-शिक्षा में अनौपचारिक शिक्षा और प्रौढ़ शिक्षा के तत्वों को भी समाहित करने पर बल दिया । उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं को संकाय या विभाग के रूप में नहीं रहना चाहिए । बिहार और राजस्थान का उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा कि अन्य राज्यों में भी प्रशिक्षण संस्थाओं का स्वतन्त्र स्वरूप होना चाहिए ।

अन्त में सत्र के अध्यक्ष श्री तिवारी जी ने संगोष्ठी में व्यक्त अभिमतों से अपनी सहमति प्रकट करते हुए कहा कि पर्याप्त विचार-विमर्श के पश्चात् अब हम इस स्थिति में पहुँच गये हैं कि कुछ कार्यकारी निर्णय ले सकें । विचार-विमर्श एवं चिन्तन-मन्थन से प्राप्त निष्कर्षों को प्रस्ताव रूप में परिणत करने का दायित्व सर्व-सम्मति से संस्थान के प्राचार्य श्री श्याम नारायण राय को सौंपा गया और सायं 5·30 बजे संगोष्ठी आगामी दिवस के लिए समाप्त हुई ।

23-9-92 पंचम सत्र : संस्तुतियों का अनुमोदन

उक्त सत्र का कार्यक्रम डॉ० एम० सी० शर्मा, विभागाध्यक्ष, बलवन्त राजपूत कालेज आगरा की अध्यक्षता में आरम्भ हुआ। अब तक की संगोष्ठी की कार्यवाही की समीक्षा करते हुए उन्होंने आग्रह किया कि प्रस्ताव की रूपरेखा बनायी जाय और उसे अन्तिम रूप दिया जाय। संस्थान के प्राचार्य श्री श्याम नारायण राय ने एक-एक करके निम्नांकित प्रस्ताव प्रस्तुत किये जिनका सदस्यों ने विचार-विमर्श के पश्चात् सर्वसम्मति से अनुमोदन किया :—

— राष्ट्र के वर्तमान आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक परिवर्तनों तथा विज्ञान और प्रौद्योगिकी के विकास के परिप्रेक्ष्य में शिक्षक-शिक्षा के उद्देश्यों में परिमार्जन-परिवर्तन किया जाना चाहिए। उद्देश्यों का विनिर्देशन प्राप्त परिणामों के आधार पर होना चाहिए।

— आज देश उस स्थान पर पहुँच गया है जहाँ शिक्षक-शिक्षा की राष्ट्रीय व्यवस्था का निर्धारण होना चाहिए। इसके लिए 'नेशनल कौंसिल आफ टीचर एजूकेशन' को वैधानिक अधिकार प्राप्त होना चाहिए और राज्य स्तरों पर 'स्टेट कौंसिल आफ टीचर एजूकेशन की स्थापना होनी चाहिए।

— राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षक-शिक्षा के सामान्य केन्द्रिक पाठ्यक्रम का निरूपण होना चाहिए।

— शिक्षक-शिक्षा संस्थाओं को स्वतंत्र अस्तित्व प्रदान किया जाना चाहिए और इन्हें सुस्पष्ट सीमाओं के अन्तर्गत स्वायत्तता मिलनी चाहिए।

— शिक्षक-शिक्षा संस्थाओं के लिए न्यूनतम भौतिक तथा मानवीय संसाधनों के मानकों के निर्धारण और उनकी आपूर्ति हेतु संकल्पित होना चाहिए। इसमें अभ्यास विद्यालयों की सम्बद्धता भी समाहित होनी चाहिए।

— सेवापूर्व प्रशिक्षणार्थियों के चयन में एकरूपता स्थापित की जानी चाहिए और चयन में अभिरुचि तथा उपलब्धि परीक्षाओं का आयोजन होना चाहिए परन्तु पात्रता परीक्षण हेतु साक्षात्कार का भी समावेश होना चाहिए।

— विभिन्न स्तरों पर बड़ी संख्या में प्रशिक्षित व्यक्तियों के सेवायोजित न हो सकने के विशेष सन्दर्भ में और शिक्षक-शिक्षा को गुणवत्ता प्रदान करने हेतु आवश्यकता आधारित मानव संसाधन के नियोजन के सिद्धान्त पर शिक्षक-प्रशिक्षण के प्रशिक्षुता प्रतिरूप का नियोजन और क्रियान्वयन होना चाहिए। प्रशिक्षुता के दौरान उपयुक्त छात्रवृत्ति का भी प्रावधान किया जाना चाहिए। वर्तमान प्रशिक्षण संस्थाओं के संसाधनों का उपभोग और उपयोग नियमित सेवाकालीन और पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों के आयोजन में किया जाना चाहिए।

— पूर्व प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण का सुदृढ़ीकरण होना चाहिए और प्राथमिक विद्यालयों के साथ पूर्व प्राथमिक शिक्षा की कम से कम दो वर्षीय व्यवस्था निर्धारित होनी चाहिए।

— शिक्षक प्रशिक्षकों की सेवा शर्तों में एकरूपता होनी चाहिए और विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग तथा राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित मानकों का अनुसरण किया जाना चाहिए।

LIBRARY & DOCUMENTATION CENTRE
National Institute of Educational Planning and Administration,
17-B, Sri Aurobindo Marg,
New Delhi-110016
DOC, No D-2712
Date 01-09-93

— शिक्षक-शिक्षा के पाठ्यक्रमों के आधुनिकीकरण की व्यवस्था आवश्यक है।

— शिक्षक-शिक्षा का मूल्यांकन और सम्पादन वास्तविक परिस्थितियों में व्यावहारिक दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए।

— विभिन्न स्तरों पर शिक्षको के सेवाकालीन तथा पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों का अलग-अलग निर्धारण होना चाहिए और इन पर विशेष बल देना चाहिए।

— दूर दर्शन, रेडियो और मुद्रण माध्यमों के प्रयोग से एक सशक्त सेवा कालीन दूरस्थ शिक्षक-शिक्षण प्रणाली के विकास पर भी विचार होना चाहिए।

— शिक्षक-शिक्षा संस्थानों के प्राध्यापकों को क्रियात्मक और व्यावहारिक नवाचारों की ओर उन्मुख करने और इन्हें सम्पादित करने के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न की जानी चाहिए।

— शिक्षक-शिक्षा संस्थाओं के परिवीक्षण, मार्ग दर्शन और मूल्यांकन तथा शिक्षक-प्रशिक्षकों का दायित्व सुनिश्चित करने की भी व्यवस्था होनी चाहिए।

समवेत प्रस्ताव के उक्त बिन्दुओं पर विद्वान प्रतिभागियों ने जो सुझाव और विचार प्रस्तुत किये, उन्हें आगामी अध्याय 'निष्कर्ष' में समाहित किया गया है।

23-9-92 षष्ट सत्र : समापन समारोह

संगोष्ठी के अन्तिम सत्र का कार्यक्रम राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद के निदेशक श्री हरि प्रसाद पाण्डेय की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ। उक्त अवसर पर प्रयाग विश्वविद्यालय के शिक्षा संकाय के अध्यक्ष डॉ० राम शकल पाण्डेय मुख्य अतिथि वक्ता के रूप में विद्यमान थे।

आरम्भ में संस्थान के प्राचार्य श्री श्याम नारायण राय ने अध्यक्ष एवं मुख्य अतिथि तथा संगोष्ठी में पधारे विद्वानों का हार्दिक स्वागत करते हुए उनका पारस्परिक परिचय कराया। प्रशिक्षण संस्थाओं के दायित्व की ओर इंगित करते हुए उन्होंने कहा कि योग्य और चरित्रनिष्ठ शिक्षकों का निर्माण ही हमारा मूलभूत दायित्व है। उन्होंने उक्त अवसर पर संगोष्ठी से प्राप्त पन्द्रह सूत्रीय प्रस्तावों को प्रस्तुत किया और अपेक्षा की कि इन्हें विभाग एवं शासन स्तर पर कार्यान्वयन हेतु प्रेषित किया जाय।

उक्त अवसर पर संगोष्ठी के कार्यकलापों एवं संप्राप्तियों की विवेचना करते हुए और अपनी प्रतिक्रिया प्रगट करते हुए गोरखपुर विश्वविद्यालय के शिक्षा संकाय के अध्यक्ष डॉ० विद्यासागर मिश्र ने इसे शिक्षक-शिक्षा के विकास के क्षेत्र में एक विशिष्ट उपलब्धि के रूप में रेखांकित किया। उन्होंने कहा कि पूर्ण मनोयोग से इस संगोष्ठी में शिक्षक-शिक्षा के विभिन्न आयामों पर गम्भीर चिन्तन-मन्थन के बाद जो निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं, यदि ये कार्यान्वयन के स्तर तक पहुँच जायँ तो शिक्षक-शिक्षा का स्तर निश्चय ही समसामयिक बन सकेगा और ऊँचा उठेगा। उन्होंने इस बात पर हार्दिक प्रसन्नता प्रगट की कि राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, उत्तर प्रदेश के तत्वावधान में प्रथमबार शिक्षक-शिक्षा पर आद्योपान्त विचार-विमर्श करके कुछ ठोस निर्णयों तक पहुँचने का प्रयास किया गया है। उन्होंने इस प्रकार की संगोष्ठियों के आयोजन पर बल दिया जिससे कार्यक्षेत्र की वास्तविकताओं का पता लगाकर उनके सुधार के कारगर उपाय किये जायँ।

समापन वक्तव्य : डॉ० राम शकल पाण्डेय

प्रयाग विश्व विद्यालय के शिक्षा संकाय के अध्यक्ष तथा शिक्षा के क्षेत्र में लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान डॉ० राम शकल पाण्डेय ने मुख्य अतिथि के रूप में आरम्भ में संस्थान के शिक्षक प्रशिक्षण अनुभाग द्वारा प्रकाशित 'तरुण शिक्षक' का विमोचन किया। अपने उद्‌गार प्रगट करते हुए डॉ० पाण्डेय ने कहा कि शिक्षक का जीवन वास्तव में चिर तारुण्य की साधना होती है। यदि शिक्षक आजीवन तरुण बना रहे तो उससे देश और समाज की बड़ी भलाई होगी।

वर्तमान संगोष्ठी की उपादेयता प्रतिपादित करते हुए उन्होंने कहा कि यदि समाज में शिक्षक आदरणीय और वरेण्य है तो उसके निर्माता शिक्षक-प्रशिक्षकों को और भी वरेण्य और आदरणीय होना चाहिए किन्तु ऐसा दिखायी नहीं देता। वर्तमान शिक्षक-शिक्षा की असन्तोषजनक स्थिति की चर्चा करते हुए उन्होंने शिक्षक-प्रशिक्षकों की सुविधाओं तथा सेवा शर्तों में सुधार की माँग की।

प्रशिक्षण संस्थाओं के उत्कर्ष और विकास को रेखांकित करते हुए उन्होंने तीन कसौटियों को ध्यान में रखने का आग्रह किया। प्रथम कसौटी बाह्य कसौटी है जिसके अन्तर्गत, संविधान, शासन प्रणाली आदि समाहित होते हैं, जो हम दूसरे के अनुकरण या स्पर्धा की स्थिति में धारण करते हैं। द्वितीय कसौटी अस्तित्वपरक है जिसका सम्बन्ध जनता, कामगारों तथा देशवासियों के जीवन स्तर की उत्कृष्टता से होता हैं। तृतीय कसौटी में जीवन के प्रति दृष्टिकोण का परिवर्तन आता है। उन्होंने आग्रह किया कि शिक्षक-शिक्षा में परिवर्तन करते समय हमें अपने को बाह्य कसौटी तक ही सीमित नहीं रखना चाहिए अपितु उक्त दोनों कसौटियों का भी प्रयोग करना चाहिए। उन्होंने कहा कि शिक्षक-शिक्षा द्वारा प्रशिक्षणार्थियों में शिक्षा तथा जीवन के प्रति एक विशिष्ट दृष्टिकोण अवश्य निर्मित होना चाहिए और उसका प्रभाव विद्यालय के साथ-साथ आस-पास के जन-जीवन में भी परिलक्षित होना चाहिए। उन्होंने इस बात पर दुःख प्रगट किया कि समाज निर्माण के लिए शिक्षा जैसे पवित्र कार्य की तुलना व्यवसाय और कारखाने से की जाने लगी है।

शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाओं के दायित्व की विवेचना करते हुए उन्होंने कहा कि शिक्षक-शिक्षा का यह प्रधान दायित्व होना चाहिए कि वे ऐसे शिक्षकों को प्रशिक्षित करके कार्यक्षेत्र में भेजें जिनका व्यक्तित्व देश और समाज के अनुसार परिवर्द्धित और परिवर्तित हो गया हो। उन्होंने प्रशिक्षणार्थियों में छिपी हुई ऊर्जा को विकसित करने पर बल देते हुए उनके शिक्षकीय दृष्टिकोण के निर्माण को महत्वपूर्ण बताया। उन्होंने शिक्षक-प्रशिक्षकों की योग्यताओं और क्षमताओं की अभिवृद्धि पर अधिक बल देते हुए कहा कि उसमें स्वयं इतनी क्षमता और मौलिकता होनी चाहिए कि वे स्वयं अपनी समस्याओं का समाधान कर सकें।

अन्त में उन्होंने संगोष्ठी के आयोजन पर प्रसन्नता प्रगट की और अपेक्षा की कि इससे प्राप्त निष्कर्ष बड़े ही महत्वपूर्ण हैं, इन्हें कार्यान्वयन के स्तर तक पहुँचाने का प्रयत्न होना चाहिए तभी इनकी वास्तविक उपयोगिता और सार्थकता होगी।

अध्यक्षीय वक्तव्य : श्री हरि प्रसाद पाण्डेय

निदेशक, राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् उत्तर प्रदेश श्री हरि प्रसाद पाण्डेय ने अपने अध्यक्षीय वक्तव्य के आरम्भ में वर्तमान शिक्षक-शिक्षा की समस्याओं की चर्चा की और कहा कि इनकी उपेक्षा

तथा अनदेखी नहीं होनी चाहिए। उन्होंने कहा आज शिक्षा के क्षेत्र में जो परिवर्तन हो रहे हैं, जो नयी-नयी बातें और विधियाँ समाहित हो रही हैं, उनका सही ज्ञान हमारे शिक्षक-प्रशिक्षकों को होना चाहिए। शिक्षक-शिक्षा की वर्तमान व्यवस्था की अनुभवपरक चर्चा करते हुए उन्होंने कहा कि विद्यालयों के वास्तविक शिक्षण कार्य और प्रशिक्षण संस्थाओं के आदर्श स्थिति के कार्यों में बहुत बड़ा अन्तर हो गया है। जब हमारा प्रशिक्षित अध्यापक कार्यक्षेत्र में जाता है तो उसे नितान्त परिवर्तित स्थिति मिलती है और प्रशिक्षण काल का लाभ उसे नहीं मिल पाता। वास्तविक दशाओं पर आधारित शिक्षक-प्रशिक्षण की योजना पर उन्होंने विशेष बल दिया। उन्होंने भावी शिक्षकों में सृजनात्मक प्रवृत्ति उत्पन्न करने की ओर भी ध्यानाकर्षण किया और कहा कि ऐसे शिक्षकों की आज आवश्यकता है जिनका दृष्टिकोण अत्यन्त उदार और व्यापक हो तथा जो प्रत्येक स्थिति में कार्य करने के लिए तत्पर हों।

सेवारत शिक्षक प्रशिक्षण को महत्व प्रदान करते हुए उन्होंने कहा कि लगभग तीन चौथाई शिक्षक बीस-पचीस वर्षों से शिक्षण कार्य कर रहे हैं। इनमें से अधिकांश बिना प्रेरणा, बिना पुर्नप्रशिक्षण के शिक्षा की नयी गतिविधियों, नये विचारों और व्यवस्थाओं, विधियों तथा दृष्टिकोणोंण से अवगत नही हैं। उनके पुनर्बोधात्मक प्रशिक्षण की सबसे बड़ी आवश्यकता है क्योंकि बहुलांश में होने के कारण और वास्तविकताओं से अपरिचित होने के कारण वे शिक्षा में कोई भी नया प्रयोग, नयी धारणा या परिवर्तन नहीं होने देते।

शिक्षक-प्रशिक्षकों की योग्यता और सेवा शर्तों के विषय में उन्होंने कहा कि आप प्रस्ताव बनाकर भेजें हम शासन स्तर पर इसे विचारार्थ और और निर्णयार्थ अवश्य रखेंगे साथ ही उन्होंने अपेक्षा की कि शिक्षक-प्रशिक्षक अपने व्यवसाय के प्रति न्याय करने के लिए निरन्तर अध्ययन और शोध की ओर उन्मुख रहेंगे। उन्होंने भावी शिक्षकों में सृजनशीलता, जागरुकता और आदरणीयता की प्रवृत्ति उत्पन्न करने पर बल दिया।

शिक्षक-शिक्षा के विविध आयामों पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने संगोष्ठी के प्रस्तावों को दृढ़तापूर्वक कार्यान्वित कराने का संकल्प व्यक्त किया। उन्होंने कहा कि जब भी हमने इस प्रकार की विद्वानो की संगोष्ठियों का आयोजन किया, उसके निष्कर्षों को कार्यान्वित करने का प्रयास किया है।

अन्त में उन्होंने संगोष्ठी में पधारे विद्वानों, शिक्षा विशेषज्ञों, आमन्त्रित शिक्षा संकाय प्रमुखों और विभागाध्यक्षों के प्रति अपनी ओर से हार्दिक आभार प्रगट किया। उन्होंने संस्थान के प्राचार्य और उनके सहयोगियों को इस महत्वपूर्ण और सामयिक राष्ट्र स्तरीय संगोष्ठी के सफलतापूर्वक आयोजन पर बधाई दी।

इस त्रिदिवसीय राष्ट्र स्तरीय संगोष्ठी का समापन संस्थान के प्राध्यापक प्रो० गोपालकृष्ण मिश्र के धन्यवाद ज्ञापन तथा समवेत राष्ट्रगान के पश्चात् हुआ।

***

निष्कर्ष

तीन दिनों तक शिक्षक-शिक्षा के विद्वानों, प्राध्यापकों और विशेषज्ञों ने 'शिक्षक-शिक्षा के नये आयाम और सम्भावनाएँ' विषय पर परस्पर उन्मुक्त भाव से विचार-विमर्श, चर्चा-परिचर्चा और चिन्तन-मनन किया। सम्यक विचारोपरान्त समवेत रूप से निष्कर्षतः जो बिन्दु उभरे, वे निम्नवत् हैं—

(1) सर्व प्रथम शिक्षक-शिक्षा की वर्तमान चुनौतियों के सन्दर्भ में उद्देश्यों पर विचार-विमर्श हुआ। विद्वानों का यह अभिमत था कि आज शिक्षा के समक्ष जो चुनौतियाँ उपस्थित हैं, उनको स्वीकारते हुए शिक्षक-शिक्षा के उद्देश्यों का पुनर्निर्धारण किया जाना आवश्यक है। इस बात पर भी बल दिया गया कि उद्देश्यों को निर्धारित करते समय हमें इस बात पर ध्यान देना होगा कि प्रशिक्षणोपरान्त हम प्रशिक्षित नव-युवकों का आचरण और व्यवहार कैसा चाहते हैं? दूसरे शब्दों में हमें यह बताना होगा कि प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद प्रशिक्षणार्थी एक शिक्षक की भूमिका का निर्वाह करने में किस सीमा तक सक्षम हो चुका है।

(2) विद्वानों ने इस तथ्य को भी अपने सामने रखा कि शिक्षक-शिक्षा जैसे महत्वपूर्ण विषय पर आज भी एक राष्ट्रीय सहमति और एकरूपता का अभाव है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने विद्यालयीय पाठ्यक्रम में राष्ट्रीय व्यवस्था की स्थापना का संकल्प लिया है। इसी के समानान्तर और इसकी सार्थकता की अभिवृद्धि हेतु यह आवश्यक है कि शिक्षक-शिक्षा की राष्ट्रीय व्यवस्था का निर्धारण किया जाय। संगोष्ठी का विचार था कि इसके लिए 'नेशनल कौंसिल आफ टीचर एजूकेशन' को वैधानिक अधिकार दिये जायँ और राज्य स्तरों पर 'स्टेट कौंसिल आफ टीचर एजूकेशन' की स्थापना की जाय। देश की सभी शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं को इनके अधीन करने से इनकी व्यवस्था का सुदृढ़ीकरण होना सम्भव हो सकेगा।

(3) संगोष्ठी ने देश में प्रचलित अनेक विश्व विद्यालयों और शिक्षा विभागों के शिक्षक-शिक्षा के पाठ्य-क्रमों की समीक्षा करते हुए यह मत निर्धारित किया कि इन विभिन्न पाठ्यक्रमों में एकरूपता का अभाव है। कहीं शिक्षक-शिक्षा के किसी विशेष आयाम पर बल हैं तो कहीं दूसरे पर बल दिया गया है। जब हमने प्राथ-मिक, उच्च प्राथमिक और माध्यमिक स्तर के पाठ्यक्रमों में राष्ट्रीय स्तर पर सामान्य केन्द्रिक तत्वों का निरू-पण किया है तो शिक्षक-शिक्षा के क्षेत्र में भी एक सामान्य केन्द्रिक पाठ्यक्रम का निर्धारण किया जाना आज युग की आवश्यकता है।

(4) विभिन्न प्रदेशों की शिक्षा व्यवस्था की समीक्षा करते हुए संगोष्ठी इस निष्कर्ष पर पहुँची कि आज प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा, उच्च शिक्षा आदि अनेक निदेशालय स्वतन्त्र रूप से कार्य कर रहे हैं साथ ही प्रारम्भिक, माध्यमिक और उच्च स्तर के महाविद्यालयों को कार्य करने की पर्याप्त स्वतन्त्रता प्राप्त है, जब कि शिक्षक-शिक्षा के स्वतन्त्र निदेशालय का अभाव है और बहुत से महाविद्यालयों में शिक्षक-शिक्षा एक अनु-

भाग के रूप में स्थापित है। यह स्थिति राष्ट्रीय विकास के परिप्रेक्ष्य में अच्छी नहीं कही जा सकती। अतः शिक्षक-शिक्षा संस्थाओं को स्वतन्त्र अस्तित्व प्रदान किये जाने की आवश्यकता है। इनके समुचित विकास के लिए यह भी आवश्यक है कि इन्हें एक सीमा तक स्वायत्तता भी प्रदान को जाय।

(5) संगोष्ठी में शिक्षक-शिक्षा संस्थाओं और विभागों में उपलब्ध मानवीय और भौतिक संसाधनों की स्थिति पर भी विचार किया गया। सभी सदस्य इस बात पर सहमत थे कि सामान्यतः ये संस्थाएँ न्यूनतम मानवीय और भौतिक संसाधनों से युक्त नहीं हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इन संस्थाओं में उपलब्ध संसाधनों का सर्वेक्षण किया जाय तथा इनके न्यूनतम मानकों का निर्धारण किया जाय। इन संसाधनों की पूर्ति के लिए शासन को तैयार किया जाय। इसी के साथ वक्ताओं ने इस बात पर भी बल दिया कि जिस प्रकार किसी भी चिकित्सा महाविद्यालय के साथ चिकित्सालय की सम्बद्धता आवश्यक समझी जाती है, उसी प्रकार प्रत्येक शिक्षण-संस्था से अभ्यास विद्यालयों की भी सम्बद्धता आवश्यक मानी जाय।

(6) संगोष्ठी द्वारा शिक्षक-शिक्षा के चयन प्रक्रिया की वर्तमान स्थिति की समीक्षा की गयी और यह तथ्य प्रकाश में आया कि विभिन्न विश्व विद्यालयों और विभागों द्वारा प्रशिक्षणार्थियों के चयन हेतु लिखित परीक्षाएँ आयोजित की जाती हैं जब कि उत्तर प्रदेश में एल० टी० में प्रवेश के लिए लिखित परीक्षा के साथ ही साक्षात्कार पर भी अधिभार दिया गया है। यह भी कहा गया कि लिखित परीक्षाओं में अभिरुचि और उपलब्धि परीक्षणों के आयोजन के मानक स्वरूप का अभाव है। सभी सदस्यों का यह विचार था कि सेवा पूर्व के प्रशिक्षणार्थियों के चयन में एकरूपता होनी चाहिए तथा वास्तविक अर्थों में अभिरुचि एवं उपलब्धि परीक्षणों का समावेश होना चाहिए। जहाँ तक साक्षात्कार परीक्षणों के आयोजन का प्रश्न है, इस पर कतिपय सदस्य सहमत नहीं थे, परन्तु सभी का अभिमत था कि पात्रता परीक्षण हेतु साक्षात्कार परीक्षणों का समावेश किसी न किसी रूप में अवश्य होना चाहिए।

(7) इस पक्ष पर संगोष्ठी में विस्तार से चर्चा हुई कि सेवा पूर्व प्रशिक्षणों में प्रशिक्षणार्थियों का चयन किस प्रकार किया जाय कि उतने ही नवयुवक प्रशिक्षण प्राप्त करें जो आगामी वर्ष में सेवायोजित हो जायँ। बड़ी संख्या में प्रशिक्षित व्यक्तियों के सेवायोजित न होने पर चिन्ता व्यक्त की गयी। समवेत रूप में संगोष्ठी का मत था कि शिक्षक-प्रशिक्षण को गुणवत्ता प्रदान करने के लिए आवश्यकता आधारित मानव संसाधन नियोजन के सिद्धान्त को अपनाया जाय और शिक्षक-प्रशिक्षण में प्रशिक्षुता प्रतिरूप को अपनाया जाय। प्रशिक्षुता के दौरान प्रशिक्षुकों को उपयुक्त छात्रवृत्ति प्रदान की जाय। वर्तमान प्रशिक्षण संस्थाओं के अतिरिक्त संसाधनों का उपयोग नियमित सेवाकालीन और पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों के आयोजन में किया जा सकता है।

(8) सदस्यों ने पूर्व प्राथमिक स्तर के शिक्षक-शिक्षा के गिरते हुए स्तर पर चिन्ता व्यक्त की और इसके सुदृढ़ीकरण पर विशेष बल दिया। पूर्व प्राथमिक शिक्षा के विस्तार और पूर्व प्राथमिक स्तर की प्रशिक्षण संस्थाओं को बढ़ावा देने के लिए संगोष्ठी का विचार था कि प्राथमिक विद्यालयों के साथ नर्सरी शिशु शिक्षा की दो वर्षीय व्यवस्था संलग्न की जानी चाहिए।

(9) संगोष्ठी में शिक्षक-प्रशिक्षकों की सेवा शर्तों पर भी विचार हुआ और विचार-विमर्श के मध्य यह बात सामने आयी कि विशेष रूप से उत्तर प्रदेश में एल० टी० और बी० एड० दो प्रकार के समकक्ष प्रशिक्षणों की व्यवस्था है परन्तु एल० टी० प्रशिक्षकों की सेवा शर्तें विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग तथा राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित मानकों के अनुसार नहीं हैं। संगोष्ठी ने एक मत से इनकी सेवा शर्तों को विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग तथा राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित मानकों के अनुसार करने पर बल दिया।

(10) विचार-विमर्श के अन्तर्गत शिक्षक-शिक्षा के प्रचलित विभिन्न वर्तमान पाठ्यक्रमों का भी आकलन किया गया और संगोष्ठी इस परिणाम पर पहुँची कि अभी भी हम ऐसे पाठ्यक्रमों का विकास नहीं कर सके हैं जो सृजनात्मक दृष्टिकोण वाले एक समग्र शिक्षक को जन्म दे सकें। अतः संगोष्ठी की मान्यता थी कि कार्य-परक तथा व्यावहारिक और वास्तविक परिस्थितियों पर आधारित, वर्तमान अपेक्षाओं और जनाकांक्षाओं के आलोक में पाठ्यक्रमों के आधुनिकीकरण की आज महती आवश्यकता है।

(11) शिक्षक-शिक्षा संस्थाओं में सम्प्रति सामान्य रूप से प्रचलित मूल्यांकन प्रणाली और व्यवस्था पर भी खुलकर चर्चा हुई। सभी ने स्वीकार किया कि वर्तमान मूल्यांकन का ढंग घिसापिटा और परम्परागत है। कक्षा शिक्षण का मूल्यांकन आदर्श परिस्थितियों में किया जाता है जिनका वास्तविक कक्षा कक्ष की दशाओं से प्रायः सम्बन्ध नहीं रहता। सत्रीय और समुदाय के साथ कार्य सम्बन्धी पक्षों के मूल्यांकन की किसी मानक व्यवस्था का भी अभाव है। संगोष्ठी को प्रबल संस्तुति रही है कि 'मूल्यांकन प्रक्रिया' पर विशेषज्ञों से अलग से विचार करना चाहिए और एक व्यावहारिक तथा वस्तुनिष्ठ व्यवस्था का विकास करना चाहिए।

(12) शिक्षकों के सेवाकालीन और पुनश्चर्या प्रशिक्षण कार्यक्रमों पर विचार करते हुए संगोष्ठी ने यह अनुभव किया कि जनसंख्या विस्तार, ज्ञान के द्रुतगति से प्रसार तथा वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकी के वर्तमान-काल में सेवारत शिक्षकों के लिए सुविचारित सुनियोजित विशिष्ट आवश्यकतापरक सेवाकालीन तथा पुनश्चर्या पाठ्यक्रम विकसित किये जायँ और उनके प्रभावी क्रियान्वयन को रणनीति निर्धारित की जाय।

(13) संगोष्ठी ने यह भी अनुभव किया कि सतत शिक्षा के इस युग में अकादमिक पाठ्यक्रमों के अध्ययन की सुविधा अनौपचारिक माध्यमों द्वारा प्रदान की जाने लगी है, पर शिक्षक-शिक्षा में यह पक्ष अछूता है। अतः इस बात की आवश्यकता है कि दूरदर्शन, रेडियो और अन्य जन संचार माध्यमों के अनुप्रयोग से सशक्त सेवाकालीन दूरस्थ शिक्षक-शिक्षण प्रणाली विकसित की जाय।

(14) शिक्षक-शिक्षा संस्थानों के अकादमिक परिवेश की स्थिति पर विचार करते हुए संगोष्ठी में प्रायः सभी प्रतिभागियों ने यह अनुभव किया कि इस क्षेत्र में कार्यरत प्राध्यापकों में नवाचारों और अभिनव प्रयोगों के संचालन और सम्वर्द्धन के प्रति उत्साह और अभिप्रेरण का अभाव दिखायी देता है। यह दशा वृत्तिक

शुचिता और विकास के लिए उपयुक्त नहीं कही जा सकती। वक्ताओं का यह भी विचार था कि इसके लिए कार्यकारी परिस्थितियाँ विशेषरूप से उत्तरदायी हैं। संगोष्ठी का यह सुनिश्चित मत था कि शिक्षक-शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत प्राध्यापकों को क्रियात्मक और व्यावहारिक प्रयोगों को संचालित करने हेतु अनुकूल परिस्थितियाँ उपलब्ध करायी जानी चाहिए।

(15) संगोष्ठी ने शिक्षक-शिक्षा संस्थाओं की प्रभावकारिता में सम्वर्द्धन के आलोक में उनके परिवीक्षण पर भी विचार किया। वक्ताओं ने एकमत से स्वीकार किया कि इन संस्थाओं के परिवीक्षण की सामान्यत: कोई स्थापित व्यवस्था नहीं है। प्राध्यापकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण की किसी भी नियमित व्यवस्था का अभाव है। शिक्षक-प्रशिक्षकों की जबाबदेही भी निर्धारित नहीं है। इस दृष्टि से इन संस्थाओं के समुचित परिवीक्षण, मार्ग-दर्शन और मूल्यांकन की व्यवस्था करने के साथ-साथ प्राध्यापकों की जबाबदेही भी निर्धारित करने की आवश्यकता है।

***

७

प्रमुख संस्तुतियाँ

(1) राष्ट्र के वर्तमान आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक परिवर्तनों और वैज्ञानिक तथा प्रौद्योगिकी के विकास के परिप्रेक्ष्य में शिक्षक-शिक्षा के उद्देश्यों में परिमार्जन / परिवर्तन किया जाना चाहिए। उद्देश्यों का विनिर्देशन प्राप्त-परिणामों के रूप में होना चाहिए।

(2) आज देश उस मुकाम पर पहुँच गया है जहाँ शिक्षक-शिक्षा की राष्ट्रीय व्यवस्था का निर्धारण होना चाहिए। इसके लिए नेशनल कौंसिल आफ टीचर एजूकेशन को वैधानिक अधिकार प्राप्त होना चाहिए और राज्य स्तरों पर स्टेट कौंसिल आफ टीचर एजूकेशन की स्थापना की जानी चाहिए।

(3) राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षक-शिक्षा के सामान्य केन्द्रिक पाठ्यक्रम का निरूपण किया जाना चाहिए।

(4) शिक्षक-शिक्षा संस्थाओं को स्वतन्त्र अस्तित्व प्रदान किया जाना चाहिए और इन्हें सुस्पष्ट सीमाओं के अन्तर्गत स्वायत्तता मिलनी चाहिए।

(5) शिक्षक-शिक्षा संस्थाओं के लिए न्यूनतम मानवीय और भौतिक संसाधनों के मानकों का निर्धारण और उनकी आपूर्ति हेतु संकल्पित होना चाहिए। इसमें अभ्यास विद्यालयों की सम्बद्धता भी समाहित होनी चाहिए।

(6) सेवापूर्व प्रशिक्षणार्थियों के चयन में एकरूपता स्थापित की जानी चाहिए और चयन में अभिरुचि तथा उपलब्धि परीक्षणों का आयोजन होना चाहिए परन्तु पात्रता परीक्षण हेतु साक्षात्कार परीक्षणों का भी समावेश होना चाहिए।

(7) विभिन्न स्तरों पर बड़ी संख्या में प्रशिक्षित व्यक्तियों के सेवायोजित न हो सकने के विशेष सन्दर्भ में और शिक्षक प्रशिक्षण को गुणवत्ता प्रदान करने हेतु आवश्यकता आधारित मानव संसाधन नियोजन के सिद्धान्त पर शिक्षक प्रशिक्षण के प्रशिक्षुता प्रतिरूप का नियोजन और क्रियान्वयन होना चाहिए। प्रशिक्षुता के दौरान उपयुक्त छात्रवृत्ति का प्रावधान किया जाना चाहिए। वर्तमान प्रशिक्षण संस्थाओं के संसाधनों का उपभोग और उपयोग नियमित सेवाकालीन और पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों के आयोजन में किया जाना चाहिए।

(8) पूर्व प्राथमिक शिक्षक प्रशिक्षण का सुदृढ़ीकरण होना चाहिए और प्राथमिक विद्यालयों के साथ पूर्व प्राथमिक शिक्षा की कम से कम दो वर्षीय व्यवस्था निर्धारित होनी चाहिए।

(9) शिक्षक प्रशिक्षकों की सेवा शर्तों में एकरूपता होनी चाहिए और विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग तथा राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित मानकों का अनुसरण किया जाना चाहिए।

(10) शिक्षक-शिक्षा के पाठ्यक्रमों के आधुनिकीकरण की आवश्यकता है।

(11) शिक्षक-शिक्षा का मूल्यांकन और सम्पादन वास्तविक परिस्थितियों में व्यावहारिक दृष्टिकोण से किया जाना चाहिए।

(12) विभिन्न स्तरों पर शिक्षकों के सेवाकालीन तथा पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों का अलग-अलग निर्धारण होना चाहिए और इन पर विशेष बल दिया जाना चाहिए।

(13) दूरदर्शन, रेडियो और मुद्रण माध्यमों के प्रयोग से एक सशक्त सेवाकालीन दूरस्थ शिक्षक-शिक्षण प्रणाली के विकास पर भी विचार होना चाहिए।

(14) शिक्षक-शिक्षा संस्थानों के प्राध्यापकों को क्रियात्मक और व्यावहारिक नवाचारों की ओर उन्मुख करने और इन्हें सम्पादित करने के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न की जानी चाहिए।

(15) शिक्षक-शिक्षा संस्थाओं के परिवीक्षण, मार्गदर्शन और मूल्यांकन तथा शिक्षक प्रशिक्षकों की जवाबदेही सुनिश्चित करने की भी व्यवस्था होनी चाहिए।

***

शिक्षक-शिक्षा के नये आयाम और सम्भावनाएँ

1. शिक्षक-शिक्षा का सूत्रपात और विस्तार :

सभ्यता के प्रारम्भ से ही दुनिया के सभी देशों की शिक्षा-व्यवस्था में शिक्षक की महत्वपूर्ण भूमिका रही है और उसे आदर, सम्मान तथा सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त थी। तब उसे सामाजिक आदर्शों, मूल्यों, मान्यताओं आदि का सर्जक और पालक माना जाता था किन्तु परिस्थितियों के घात-प्रतिघात और परिवर्तन ने अठारहवीं शताब्दी तक आते-आते उस आदर्श सामाजिक शिक्षक की अवधारणा को निर्मूल सिद्ध कर दिया और वह अपने नये स्वरूप में एक विषय शिक्षक के रूप में उपस्थित हुआ। शिक्षण एक सामान्य कार्य व्यापार का रूप हो गया और शिक्षक से किसी विशेष दक्षता, विशेष कौशल, विशेष अनुभव या ज्ञान की अपेक्षा नहीं रही।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तर काल तथा बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में विश्व के ज्ञान-क्षितिज पर वैज्ञानिक युग का अवतरण हुआ जिसके कारण शिक्षक-शिक्षा का सूत्रपात हुआ। इन्हीं परिस्थितियों ने मनोविज्ञान को जन्म दिया जिसने मानव-मन और मस्तिष्क पर वैज्ञानिक प्रयोग करके सीखने के नये-नये सोपानों की उद्‌भावना की। विज्ञान तथा मनोविज्ञान के संयोग से शैक्षिक तकनीकी का विकास हुआ। हरबार्ट जैसे दार्शनिक और शिक्षा शास्त्री ने अध्यापन-चरणों को विकसित करके शिक्षण क्रिया को शिक्षाशास्त्र के रूप में परिणत किया।

स्वतन्त्रता के पूर्व की स्थिति :

भारतवर्ष में शिक्षक-शिक्षा का समुचित सूत्रपात 'वुड' के 1854 के घोषणा पत्र के फलस्वरूप हुआ। तब देश में अंग्रेजी पद्धति के विद्यालय स्थापित हो चुके थे, जिनके सामने नये ढंग से नये-नये विविध विषयों के पढ़ाने वाले शिक्षकों का घोर अभाव था। फलतः प्रारम्भ में प्राथमिक स्तर के शिक्षकों की प्रशिक्षण व्यवस्था के लिए 'नार्मल स्कूल' खोले गये। सन् 1882 तक देश में नार्मल स्कूलों की संख्या 106 थी तथा माध्यमिक स्तर की मात्र दो प्रशिक्षण संस्थाएँ—मद्रास और लाहौर से संचालित थीं। 1904 के राजकीय प्रस्ताव के अनुसार प्रशिक्षण कार्यक्रम में क्रियात्मक पक्ष के साथ सैद्धान्तिक पक्ष को भी पाठ्यक्रम में समाहित किया गया।

1917 में कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग के सुझाव के अनुसार माध्यमिक स्तरीय शिक्षक-प्रशिक्षण को विश्व-विद्यालय के अन्तर्गत संचालित करने की व्यवस्था हुई। सन् 1922 तक सम्पूर्ण देश में 1072 नार्मल स्कूल तथा 12 प्रशिक्षण महाविद्यालय स्थापित हो चुके थे। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पूर्व तक इन प्रशिक्षण संस्थाओं की संख्या में विस्तार होता रहा। इनमें प्रमुख ध्यान विषय शिक्षण पर ही केन्द्रित रहा। 1947 तक देश में प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए नार्मल स्कूल, मिडिल स्कूलों के शिक्षकों के लिए सेकेण्डरी ट्रेनिंग स्कूल तथा उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों के लिए ट्रेनिंग कालेज संचालित किये जाते थे।

स्वतन्त्र भारत में शिक्षक-शिक्षा की गुणवत्ता में अभिवृद्धि हेतु प्रयास :

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् शिक्षक-शिक्षा में गुणात्मक अभिवृद्धि हेतु अनेक प्रयास किये गये। राधा कृष्णन् आयोग (1949) ने पुस्तकीय एवं सैद्धान्तिक ज्ञान की अपेक्षा कक्षा शिक्षण अभ्यास पर बल दिया तथा शिक्षक प्रशिक्षकों के गुणात्मक उत्कर्ष को रेखांकित किया। माध्यमिक शिक्षा आयोग (1952-53) ने शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए दो प्रकार की संस्थाएँ—उच्चतर माध्यमिक शिक्षा समाप्त करने वालों के लिए दो वर्ष के पाठ्यक्रम तथा स्नातकों के लिए एक वर्ष के पाठ्यक्रम की अनुशंसा की तथा अधिकाधिक विद्यालयों में अभिनव पाठ्यक्रमों (Refresher Courses) और प्रमुख विषयों के लिए लघु गहन पाठ्यक्रमों (Short Intensive Course) के संचालन को महत्व प्रदान किया। इन दोनों आयोगों की अनुशंसाओं के फलस्वरूप शिक्षक-शिक्षा की व्यापक प्रगति हुई और सन् 1950-51 में जहाँ प्रशिक्षण विद्यालयों की संख्या 782 तथा प्रशिक्षण महाविद्यालयों की संख्या 53 थी वहीं 60-61 तक इनकी संख्या बढ़कर क्रमशः 1138 तथा 478 हो गयी।

शिक्षा के गुणात्मक उत्कर्ष के लिए केन्द्रीय शासन ने 1961 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की स्थापना करके शिक्षक-शिक्षा पर समन्वित रूप से शोधपरक विचार करने का मार्ग प्रशस्त किया। परिषद् को उच्च कोटि के शिक्षक-प्रशिक्षण की व्यवस्था के साथ ही शिक्षक-प्रशिक्षण की नवीन विधियों की खोज तथा उनके प्रयोगों को प्रोत्साहित करने का दायित्व सौंपा गया। इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए परिषद् ने 'राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान' का निर्माण किया तथा 1963 में बहुउद्देश्यीय चार प्रादेशिक शिक्षा महाविद्यालयों की स्थापना की। तीसरी पंचवर्षीय योजना में प्रत्येक प्रदेश में शिक्षा सम्बन्धी शोध, विस्तार, शिक्षक-प्रशिक्षण तथा शिक्षाधिकारियों के प्रशिक्षण के लिए राज्य शिक्षा संस्थानों की स्थापना की गयी। शिक्षक-प्रशिक्षण को आधुनिक, समसामयिक एवं प्रगतिशील बनाने के लिए केन्द्रीय शासन ने राष्ट्रीय शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान (NCTE) की स्थापना की। केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार समिति की सलाह पर राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की तरह प्रत्येक राज्य की शिक्षक-शिक्षा के विकास, शैक्षिक शोध एवं शिक्षा के समग्र उन्नयन के लिए राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषदों की संस्थापना हुई।

शिक्षक-शिक्षा में सबसे महत्वपूर्ण सुझाव कोठारी कमीशन (1964-66) ने प्रस्तुत किये। आयोग ने

प्रत्येक प्रशिक्षण महविद्यालय में 'प्रसार सेवा विभाग', प्रत्येक राज्य में 'काम्प्रीहेंसिव' कालेज तथा 'अध्यापक शिक्षा स्टेट बोर्ड' तथा पत्राचार पाठ्यक्रम संचालित करने पर विशेष बल दिया। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में अध्यापक शिक्षा को एक सतत प्रक्रिया मानकर इसे आमूल-चूल परिवर्तित करने का संकल्प लिया गया तथा शिक्षा नीति की नयी दिशाओं के अनुसार आगे बढ़ने की आवश्यकता पर बल दिया गया और तदनुसार शिक्षक शिक्षा का एक प्रारूप प्रस्तुत किया गया जिसे राष्ट्रीय स्तर पर संचालित करने का प्रयास किया गया। फलतः जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान, शिक्षक शिक्षा महाविद्यालय, 'इंस्टीट्यूट आफ एडवांस स्टडीज इन एजूकेशन' एवं 'एकेडमिक स्टाफ कालेज' की देश स्तर पर स्थापना का मार्ग प्रशस्त हुआ।

(2) शिक्षक शिक्षा का वर्तमान स्वरूप : एक विहंगावलोकन

इस समय देश में सेवापूर्व और सेवारत शिक्षक-शिक्षा के सामान्यतः निम्नांकित स्तर प्रचलित हैं—

(1) पूर्व प्राथमिक स्तरीय प्रशिक्षण
(2) प्राथमिक और उच्च प्राथमिक स्तरीय प्रशिक्षण
(3) माध्यमिक स्तरीय प्रशिक्षण।

इन विभिन्न स्तरीय प्रशिक्षणों के लिए निम्नलिखित प्रकार की संस्थाएँ कार्यरत हैं—

(1) पूर्व प्राथमिक प्रशिक्षण संस्थाएँ
(2) नार्मल या प्राथमिक प्रशिक्षण विद्यालय
(3) जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान
(4) शिक्षण महाविद्यालय
(5) विश्वविद्यालयों / महाविद्यालयों के शिक्षा संकाय / विभाग
(6) क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय
(7) विशिष्ट प्रशिक्षण संस्थाएँ—
- राज्य शिक्षा संस्थान
- राज्य विज्ञान शिक्षा संस्थान
- भाषाओं, शारीरिक शिक्षा, ललित कलाओं, गृह विज्ञान आदि से सम्बन्धित प्रशिक्षण संस्थाएँ
- राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद।

(1) पूर्व प्राथमिक स्तरीय प्रशिक्षण :

पूर्व प्राथमिक शिक्षा की प्रशिक्षण संस्थाएँ नर्सरी, माण्टेसरी अथवा किंडरगार्टेन के नाम से प्रायः सभी

राज्यों में संस्थापित हैं। इनकी संख्या कम है। इन प्रशिक्षणों की अवधि प्रायः दो वर्ष की है। इसमें राजकीय और निजी प्रबन्ध तन्त्र के अधीन संचालित दोनों प्रकार की संस्थाएँ कार्यरत हैं। इनमें प्रशिक्षित अध्यापक-अध्यापिकाएँ पूर्व प्राथमिक कक्षाओं में पढ़ाने के लिए अर्ह होते हैं। इनमें प्रवेश की योग्यता प्रायः इण्टरमीडिएट (+2) है। राष्ट्रीय स्तर पर इस समय भी विस्तार, प्रसार एवं गुणात्मक विकास की दृष्टि से ये अब भी अपनी शैशवावस्था में हैं।

(2) प्राथमिक और उच्च प्राथमिक स्तरीय प्रशिक्षण :

प्राथमिक और उच्च प्राथमिक शिक्षकों के सेवापूर्व एवं सेवारत प्रशिक्षण की व्यवस्था सामान्यतः राज्य के शिक्षा विभागों द्वारा की जाती है। इनके लिए कुछ विश्वविद्यालयों द्वारा टी० डी० या डिप० टी० या सी० टी० के डिप्लोमा पाठ्यक्रम भी चलाये जाते हैं। सामान्यतः इनके प्रशिक्षण की अवधि दो वर्ष की है परन्तु किसी-किसी राज्य में एक वर्ष की है। ये शिक्षक कक्षा 1 से 8 तक पढ़ाने के योग्य माने जाते हैं। इनमें प्रवेश की योग्यता सामान्यतः इण्टरमीडिएट है किन्तु कतिपय राज्यों में स्नातक योग्यता निर्धारित है। प्राथमिक और उच्च प्राथमिक के अध्यापकों के लिए सेवारत प्रशिक्षण की कोई सुनियोजित योजना नहीं है। आवश्यकता पड़ने पर विभिन्न कार्यक्रमों अथवा परियोजनाओं के अन्तर्गत सेवारत प्रशिक्षण के लघु प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। राज्य शिक्षा संस्थानों के तत्वावधान में इन प्रशिक्षण संस्थाओं द्वारा अप्रशिक्षित अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था भी पत्राचार एवं सम्पर्क योजना के अन्तर्गत संचालित होती है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के परिप्रेक्ष्य में शिक्षक-शिक्षा के सुधार और प्रगतिशीलता के लिए राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम के आधार पर जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना विभिन्न चरणों में की जा रही है। इनका कार्यक्षेत्र विशेष रूप से प्रारम्भिक शिक्षा के अध्यापकों को सेवापूर्व और सेवारत प्रशिक्षण प्रदान करना है। देश के अनेक जनपदों में ये संस्थान स्थापित हो चुके हैं और शेष में इनकी स्थापना का कार्य प्रगति पर है। इनके प्रतिस्थापन के फलस्वरूप निम्न स्तरीय प्रशिक्षण संस्थाएँ धीरे-धीरे समाप्त होती जा रही है।

(3) माध्यमिक स्तरीय प्रशिक्षण :

माध्यमिक कक्षाओं के अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षण महाविद्यालय, शिक्षा महाविद्यालय, क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय, विश्वविद्यालयों के शिक्षा संकाय तथा महाविद्यालयों के शिक्षा विभाग कार्यरत हैं। कतिपय प्रशिक्षण महाविद्यालय राज्य सरकारों के शिक्षा विभाग द्वारा संचालित हैं जबकि चार क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय अजमेर, भोपाल, भुवनेश्वर तथा मैसूर राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् नयी दिल्ली द्वारा संचालित होते हैं। सामान्यतः इनमें प्रवेश की अर्हता स्नातक उपाधि है और प्रशिक्षण अवधि

एक वर्ष की है। क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालयों में चार वर्षीय एकीकृत पाठ्यक्रम भी संचालित होता है। इन पाठ्यक्रमों में प्रवेश योग्यता इण्टरमीडिएट + 2 स्तर है। इनके द्वारा, समय-समय पर सेवारत प्रशिक्षण के लघु पाठ्यक्रम अथवा अप्रशिक्षित अध्यापकों के पूर्ण प्रशिक्षण की व्यवस्था भी की जाती है परन्तु सेवारत प्रशिक्षण के किसी निर्धारित और नियमित कार्यक्रम का अभाव है। विशिष्ट सेवारत प्रशिक्षणों की व्यवस्था विभिन्न विशिष्ट संस्थानों द्वारा भी समय-समय पर की जाती है।

वर्तमान शिक्षक-शिक्षा के कार्यक्रमों की समीक्षा से इनकी निम्नांकित कमियाँ प्रमुख रूप से प्रकाश में आती हैं—

(1) वर्तमान शिक्षक शिक्षा कार्यक्रम मूलतः सिद्धान्त केन्द्रित हैं।

(2) यह विद्यालय तथा समुदाय की वास्तविक परिस्थितियों से अलग-थलग है।

(3) क्रियात्मक कार्यों की अवधि अपर्याप्त है और पद्धति परम्परागत है।

(4) शिक्षकों के व्यवस्थित और आवर्ती सेवाकालीन शिक्षा की कोई भी व्यवस्था नहीं है।

(5) सेवाकालीन शिक्षण को अधिक प्रभावी बनाने के लिए अनुसंधान आधार नहीं है।

(6) शिक्षक-शिक्षा के नियोजन और प्रबन्धन के दृष्टिकोण से राज्य तथा राष्ट्रीय स्तर पर अपर्याप्त, आधार संरचना है।

(7) शिक्षक-शिक्षा की मूल्यांकन पद्धति निष्कर्ष केन्द्रित नहीं है।

3. वर्तमान राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में शिक्षक-शिक्षा की चुनौतियाँ :

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में कहा गया है कि 'हमारा देश आर्थिक और तकनीकी दृष्टि से उस मुकाम पर पहुँच गया है जहाँ से हम अब तक के संचित साधनों का प्रयोग करते हुए समाज के हर वर्ग को लाभ पहुँचाने का प्रबल प्रयास करें। शिक्षा उस लक्ष्य तक पहुँचाने का प्रमुख साधन है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने सबके लिए शिक्षा, हमारे भौतिक और आध्यात्मिक विकास की बुनियादी आवश्यकता के रूप में निरूपित किया है। समवेत रूप में शिक्षा की वर्तमान तथा भविष्य के निर्माण का अनुपम साधन माना गया है। शिक्षा के इन उद्देश्यों को मूर्तरूप देने का सर्वाधिक सशक्त अभिकर्ता शिक्षक है। आज की राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय आवश्यकताओं और चुनौतियों के परिप्रेक्ष्य में शिक्षक की भूमिका और एतदर्थ शिक्षक-शिक्षा को नये संदर्भों में देखने की आवश्यकता है। इन चुनौतियों को प्रमुखरूप से निम्नलिखित पक्षों के अन्तर्गत रखकर विचार किया जा सकता है :—

(1) जनसंख्या, ज्ञान एवं प्रत्याशा विस्फोटजनित चुनौतियाँ :

जनसंख्या की वृद्धि और उसके प्रभावों पर बृहद् प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं है। विभिन्न प्रयासों के बावजूद भी जनसंख्या वृद्धि पर अपेक्षित नियंत्रण नहीं हो पा रहा है। दूसरी ओर स्वतंत्रता के

पश्चात् सामान्य जन में प्रत्याशाओं का विस्फोट हुआ हैं और शिक्षा प्राप्ति के प्रति ललक एवं लालसा में वृद्धि हुई है। इधर ज्ञान का विस्तार अत्यन्त द्रुतगति से हो रहा है। इनके कारण जहाँ एक ओर कक्षाओं में विभिन्न सामाजिक, आर्थिक स्तरों के छात्रों की संख्या बढ़ी है, वहीं दूसरी ओर ज्ञान की वृद्धि के साथ कदम मिलाकर चलने की आवश्यकता भी उत्पन्न हुई है। शिक्षक के समक्ष एक ओर अधिक से अधिक विभिन्न सामाजिक, आर्थिक स्तरीय छात्रों को उतने ही समय में बढ़ते हुए ज्ञान को देना है तो दूसरी ओर एक विकासमान समाज को गति देने के लिए भी प्रयासरत रहना है।

(2) मूल्यों के संकट सम्बन्धी चुनौतियाँ :

भारत विविधताओं, विभिन्न जातियों, धर्मों, समुदायों, प्रदेशों, मूल्यों और विश्वासों का देश है। भारत में जो विविधता में एकता आवश्यक रूप से विद्यमान है, उसका विद्यार्थियों को स्वयं अनुभव करने तथा संकीर्ण निष्ठाओं से ऊपर उठकर राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने की आवश्यकता है। आज हमारे सामने मूल्यों का सबसे बड़ा संकट है। शाश्वत मूल्यों—आध्यात्मिक और नैतिक—का ह्रास हो रहा है। लोकतांत्रिक मूल्य जैसे—वैज्ञानिक प्रवृत्ति, सहनशीलता, अन्य राष्ट्रीय समूहों की संस्कृति के प्रति आदर आदि पर विशेष रूप से जोर देने की आवश्यकता है। पर्यावरण की सुरक्षा और जनसंख्या वृद्धि हमारी चिन्ता के विषय हैं। धार्मिक सहिष्णुता और पंथ निरपेक्षता हमारी राष्ट्रीय आवश्यकताएँ बन चुकी हैं।

आज शिक्षक-शिक्षा के समक्ष उक्त संकट और चुनौतियाँ विद्यमान हैं। अतः शिक्षक-शिक्षा में इन चुनौतियों का समाधान सम्मिलित करना युग की अपरिहार्यता है।

(3) शिक्षा और आधुनिकीकरण की चुनौती :

परम्परागत समाज की तुलना में आधुनिक समाज की सबसे बड़ी विशेषता उसके द्वारा अपनाया गया विज्ञान आधारित शिल्प विज्ञान है। वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकी के विकास के कारण जो मूलभूत सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तन आते हैं, उन्हें मोटे तौर पर आधुनिकीकरण की संज्ञा दी जा सकती है। आधुनिकीकरण की इस प्रक्रिया को मूर्तरूप देने के लिए शिक्षा और शिक्षक की भूमिका सर्वोपरि है। अतः शिक्षक-शिक्षा के समक्ष उसके सम्पूर्ण ढाचे के आधुनिकीकरण की आवश्यकता है। इसके अन्तर्गत जहाँ एक ओर संशैक्षिकी (pedagogy) तथा शैक्षिक तकनीकी के आधुनिकीकरण की समस्या है वहीं दूसरी ओर अध्यापन को एकशास्त्र के रूप में विकसित करने तथा शिक्षण को एक पवित्र वृत्ति के रूप में प्रतिस्थापित करने की आवश्यकता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर आज हमें एक पूर्ण शिक्षक की आवश्यकता है जो केवल किसी विषय मात्र का शिक्षक न होकर छात्र के व्यक्तित्व को सर्वांगीण प्रगति प्रदान करनेवाला हो। वह विषय भी पढ़ा ले,

छात्रों को कार्यानुभव भी सिखा दें, उनके सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भी योगदान कर सके और छात्रों की सृजनात्मकता को विकसित कर सके। इसके लिए हमें एक ऐसे शिक्षक की आवश्यकता हैं—

- जिसके लिए शिक्षण एक आनन्ददायी प्रक्रिया हो।
- जिसके लिए शिक्षण एक पवित्र वृत्ति हो।
- जिसमें छात्रों के प्रति सहानुभूति और अनुराग हो।
- जिसमें ज्ञान-प्राप्ति की उत्कट लालसा हो।
- जिसमें नवाचारों के प्रति सृजनात्मक दृष्टिकोण हो।
- जिसमें मानव मूल्यों के प्रति आस्था हो।

उपर्युक्त के आधार पर यह विचारणीय है कि शिक्षक-शिक्षा और प्रक्रिया को कौन सा स्वरूप प्रदान किया जाय कि लक्ष्यों की प्राप्ति हो सके।

4. शिक्षक-शिक्षा : नये आयाम और सम्भावनाएँ :

चूंकि शिक्षा ही व्यक्ति और समाज के निर्माण की रीढ़ है, इसलिए उसके केन्द्र बिन्दु शिक्षक की योग्यता, गुणवत्ता, चरित्र और कार्य पद्धति के विषय में हर सभ्य समाज चिंतित रहा है। हमारे देश में स्वतन्त्रता के पश्चात् शिक्षा के सुधार के लिए जो भी आयोग या समितियाँ बनीं उन्होंने शिक्षक-शिक्षा के सुधार और विकास के लिए अनेक अनुशंसाएँ की हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की आचार्य राममूर्ति समीक्षा समिति की रिपोर्ट में शिक्षक के प्रशिक्षण के स्थान पर शिक्षक का विकास कहना अधिक संगत माना गया है। जब हम शिक्षक-शिक्षा के नये आयाम और सम्भावनाओं पर विचार करते हैं तो हमारे समक्ष शिक्षक-विकास से सम्बन्धित विभिन्न आयाम—प्रबन्ध व्यवस्था, नियन्त्रण, पाठ्यक्रम, उसका कार्यान्वयन, मूल्यांकन आदि के प्रश्न उभरते हैं। कतिपय प्रमुख आयामों और सम्भावनाओं की चर्चा यहाँ की जा रही है—

(1) शिक्षक शिक्षा के उद्देश्यों का पुनर्निर्धारण :

जैसा कि शिक्षक शिक्षा की वर्तमान चुनौतियों के सन्दर्भ में चर्चा की जा चुकी हैं, हमारा वर्तमान परिदृश्य वैज्ञानिक, औद्योगिक एवं तकनीकी के विकास का है, जिसने मानव नियति को ही परिवर्तित कर दिया है और विकास तथा प्रगति ने बने बनाये ज्ञान और विश्वास मार्ग पर चलने की अपेक्षा निरन्तर नये प्रयोग और परिवर्तन को प्रश्रय दिया है फिर भी जनसंख्या की अनियन्त्रित वृद्धि तथा आर्थिक एवं सामाजिक स्तरों की विभिन्नता विद्यमान हैं। अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर राजनीति एवं अर्थनीति के बदलते हुए मानदण्ड तथा अनिश्चित एवं संघर्षपूर्ण इक्कीसवीं शताब्दी की चुनौतियाँ भी हमारे सामने हैं। शिक्षा का सर्वीकरण, महिलाओं, बालिकाओं, अनुसूचित जाति, अनु० जनजातियों, पिछड़े और निर्धन वर्ग को शिक्षा के समान अवसरों को उपलब्ध करना हमारी संवैधानिक जिम्मेदारी है। एक समतावादी, सामंजस्यपूर्ण, विकासशील और लोक-

तान्त्रिक समाज के निर्माण के लिए शिक्षक को तैयार करना है। अतः शिक्षक-शिक्षा के ढाँचे के पुनर्निर्धारण पर विचार करने की आवश्यकता है।

(2) शिक्षक शिक्षा की राष्ट्रीय व्यवस्था :

जिस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत सम्पूर्ण देश में एक ही प्रकार की शैक्षिक संरचना को स्वीकार किया गया है और 10+2+3 के ढाँचे को पूरे देश में लागू किया गया है, उसी प्रकार विभिन्न स्तरों की शिक्षक-शिक्षा की संरचना भी निर्धारित होनी चाहिए। शिक्षक-शिक्षा का एक राष्ट्रीय शिक्षा क्रम भी होना चाहिए जिसमें एक सामान्य केन्द्रिक (Common Core) हो और अन्य क्षेत्रों के विषय में लचीलापन रहे जिन्हें स्थानीय पर्यावरण तथा परिवेश के अनुसार ढाला जा सके। इस दिशा में 'नेशनल कौंसिल आफ टीचर एजूकेशन' ने गत वर्ष एक आदर्श पाठ्यक्रम का निर्माण किया है परन्तु राष्ट्रीय व्यवस्था के अभाव में इसके आधार पर विभिन्न विश्वविद्यालयों तथा शिक्षा विभागों द्वारा पहल नहीं की जा सकी है।

राष्ट्रीय व्यवस्था के अन्तर्गत 'नेशनल कौंसिल आफ टीचर एजूकेशन' को वैधानिक [illegible]। जैसे 'मेडिकल कौंसिल आफ इण्डिया' देश की समस्त चिकित्सा संस्थाओं पर उनकी स्तरीयता को बनाये रखने के लिए नियंत्रण रखती है, उसी प्रकार का अधिकार नेशनल कौंसिल आफ टीचर एजूकेशन को प्रदान किया जाना चाहिए। नेशनल कौंसिल आफ टीचर एजूकेशन के आधार पर राज्यों में 'स्टेट कौंसिल आफ टीचर एजूकेशन' की स्थापना की जानी चाहिए जो प्रदेश के समस्त प्रकार के शिक्षक-प्रशिक्षणों पर गुणवत्ता को बनाये रखने के लिए नियंत्रण रखें।

(3) शिक्षक-शिक्षा संस्थाओं को स्वतन्त्र अस्तित्व प्रदान करना :

वर्तमान में शिक्षक-शिक्षा का प्रबन्ध (विशेष रूप से माध्यमिक स्तर के शिक्षकों को तैयार करने के लिए) विश्वविद्यालयों में शिक्षा संकाय के रूप में अथवा महाविद्यालयों में एक शिक्षा विभाग के रूप में है। इनके स्वतन्त्र अस्तित्व के अभाव में इन पर अपेक्षित ध्यान देना सम्भव नहीं होता। इनका स्वरूप और इनकी कार्य पद्धति अन्य अकादमिक पाठ्यक्रमों तक सिमट कर रह जाती है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि इनको स्वतन्त्र अस्तित्व प्रदान किया जाय और इन्हें शिक्षा महाविद्यालय के रूप में प्रतिष्ठित किया जाय।

(4) शिक्षक-शिक्षा संस्थाओं के लिए न्यूनतम मानवीय और भौतिक संसाधनों का निर्धारण और आपूर्ति :

सम्प्रति अनेक शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं में न्यूनतम भौतिक एवं मानवीय संसाधनों का अभाव है और वे स्तरीय प्रशिक्षण प्रदान करने में समर्थ नहीं हैं। आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं, विभागों, संकायों के लिए न्यूनतम मानवीय और भौतिक संसाधनों के मानकों का निर्धारण किया जाय और

इनकी आपूर्ति सुनिश्चित की जाय। मानवीय संसाधनों के अन्तर्गत शिक्षक-प्रशिक्षकों की योग्यता, झुकाव और अनुभव पर विशेष ध्यन देने की आवश्यकता है।

(५) सेवा पूर्व प्रशिक्षणार्थियों के चयन में एकरूपता की स्थापना :

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के आधार पर प्रशिक्षणार्थियों का चयन विगत वर्षों से अभिरुचि तथा उपलब्धि परीक्षणों के आधार पर होने लगा है, फिर भी विभिन्न विश्वविद्यालयों और शिक्षा विभागों द्वारा संचालित प्रवेश परीक्षओं के स्वरूप, विभिन्न अधिभारों के प्रावधान आदि में पर्याप्त भिन्नता है। आवश्यकता है कि प्रवेश परीक्षाओं में एकरूपता स्थापित की जाय और इनको ऐसा स्वरूप प्रदान किया जाय जिससे अध्यापन व्यवसाय में समर्पित और निष्ठावन व्यक्ति ही प्रवेश पा सकें।

(६) आवश्यकता आधारित शिक्षक-प्रशिक्षण की प्रशिक्षुता प्रतिरूप का नियोजन और क्रियान्वयन :

इस समय प्रारम्भिक और माध्यमिक, दोनों स्तरों पर बहुत से प्रशिक्षित नवयुवक एवं नवयुवतियाँ बेरोजगार हैं। बहुत से शिक्षक-शिक्षा में प्रशिक्षित व्यक्ति अध्यापन व्यवसाय में प्रवेश न पाने के कारण अन्य व्यवसायों में चले जाते हैं। प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद भी सेवा योजना की क्षीण सम्भावना एक ओर प्रशिक्षण की गुणवत्ता को घटा देती हैं तो दूसरी ओर प्रतिभा सम्पन्न लोगों को आकर्षित भी नहीं कर पाती है। विचारणीय है कि जनशक्ति नियोजन के सिद्धान्त के अनुसार पाँच वर्षों की आवश्यकताओं का अनुमान लगाया जाय और उसके आधार पर प्रशिक्षणार्थियों को प्रवेश दिया जाय।

(७) शिक्षक-शिक्षा के पाठ्यक्रमों का आधुनिकीकरण :

पूर्व में इसक उल्लेख किया जा चुका है कि नयी चुनौतियों का सामना करने में सक्षम; महत्व के नये कार्यों को सम्पादित करने में योग्य, नवाचारों के प्रति सृजनात्मक दृष्टिकोण रखने वाले तथा शिक्षण को आनन्दमय प्रक्रिया समझने वाले आज हमें एक समग्र शिक्षक की आवश्यकता है। हमें ऐसे पाठ्यक्रम की भी आवश्यकता है जो सिद्धान्त केन्द्रित न होकर कार्यपरक एवं व्यावहारिक हों, जो विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय तथा समुदाय की वास्तविक परिस्थितियों से तालमेल रखता हो तथा राष्ट्रीय अपेक्षाओं एवं जनाकांक्षाओं के अनुकूल हो। अतः शिक्षक-शिक्षा के वर्तमान पाठ्यक्रमों का आधुनिकीकरण किया जाय। इन पाठ्यक्रमों में ऐसे क्रियाशीलनों का समावेश होना चाहिए जो आवश्यक सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ-साथ शिक्षक को व्याहारिक ज्ञान और कौशल का अनुभव प्रदान कर सकें तथा उनमें उपयुक्त कौशल और अभिवृत्तियाँ उत्पन्न कर सकें। अतः माध्यमिक स्तर पर एक वर्षीय पाठ्यक्रम के स्थान पर दो वर्षीय पाठ्यक्रम प्रारम्भ करने पर विचार करना अपेक्षित होगा।

(८) मूल्यांकन :

वर्तमान में सामान्य रूप से मूल्यांकन वर्ष के अन्त में लिखित और क्रियात्मक कार्य के रूप में किया

जाता है। मूल्यांकन का तरीका लगभग परम्परागत है। क्रियात्मक कार्यों के मूल्यांकन का स्तर और प्रक्रिया दोषपूर्ण है। इस परीक्षा का सम्पादन आदर्श परिस्थितियों में किया जाता है जिसका वास्तविकता से सम्बन्ध नहीं होता। अतः शिक्षक-शिक्षा के मूल्यांकन की प्रक्रिया और व्यवस्था पर गहराई से विचार करने की आवश्यकता है।

(9) सेवा कालीन प्रशिक्षण की व्यवस्था :

इस समय सेवा कालीन प्रशिक्षणों की सुनियोजित व्यवस्था का अभाव है। आज के युग में किसी भी व्यवसाय के अभिकर्मी के लिए सेवाकालीन प्रशिक्षणों की आवश्यकता निर्विवाद है। ज्ञान के द्रुत गति से होते हुए विस्तार, विद्यालयीय पाठ्यक्रमों में शीघ्र परिवर्तन तथा सभ्यता और संस्कृति में हो रहे बदलाव के कारण आज इस बात की आवश्यकता है कि सेवा कालीन तथा पुनश्चर्या पाठ्क्रमों को जलग-अलग बनाया जाय और ये शिक्षक की विशिष्ट आवश्यकताओं से सम्बद्ध हों। वस्तुतः सेवाकालीन कार्यक्रमों को शिक्षक के विकास तथा मूल्यांकन में सहायक होना चाहिए और उसे अनुवर्ती योजना का अंग होना चाहिए। इनका उद्देश्य जहाँ एक ओर शिक्षक को नये परिवर्तनों एवं प्रवृत्तियों से अवगत कराना हो, वहीं दूसरी ओर उन्हें अनुसंधान तथा सृजनात्मक कार्यों की सम्पादित करने की प्रेरणा भी देना हो। दूर दर्शन, रेडियो, और मुद्रण माध्यमों के प्रयोग से एक सशक्त सेवाकालीन दूरस्थ शिक्षण प्रणाली के विकास पर भी विचार किया जाना चाहिए। यदाकदा सम्पर्क कार्यक्रमों से इसे मजबूती देने के स्वरूप पर भी विचार होना चाहिए।

यह भी उल्लेख्य है कि प्रारम्भिक विद्यालयों के शिक्षकों के लिए सेवाकालीन प्रशिक्षण का दायित्व जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थानों को सौंपा गया है परन्तु माध्यमिक स्तर के शिक्षकों के लिए सेवाकालीन प्रशिक्षण के किसी निश्चित अभिकरण का अभाव है। अतः जैसा कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति में प्रकल्पित था 'इन्स्टीट्यूट आफ एडवांस स्टडीज इन एजूकेशन' तथा 'एकेडिमिक स्टाफ कालेज' की त्वरित स्थापना पर विचार किया जाना चाहिए।

(10) शिक्षक-शिक्षा संस्थाओं को क्रियात्मक एवं व्यावहारिक नवाचारों की ओर उन्मुख करना :

विकास और अनुसंधान का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। प्रायः अनुभव किया जाता है कि शिक्षण प्रशिक्षण संस्थाओं में क्रियात्मक एवं व्यावहारिक अनुसंधानों, प्रयोगों, अध्ययनों और नवाचारों के वातावरण का अभाव है। आवश्यकता है कि शिक्षक प्रशिक्षक स्वयं शिक्षा के क्षेत्र की विभिन्न समस्याओं के समाधान, उत्कृष्टता की प्राप्ति और विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमों के मूल्यांकन के सन्दर्भ में यथार्थपरक तथा अनुभवजन्य प्रयोग, अध्ययन और अनुसंधान करें तथा उनके परिणामों के आधार पर स्वयं की क्रियाविधि में सुधार लायें और

अन्यों को भी लाभान्वित करें। हमारी प्रशिक्षण संस्थाओं का यह एक अछूता क्षेत्र है। वस्तुतः इन्हें यथार्थ-परक क्रियात्मक अनुसंधानों के केन्द्र के रूप में विकसित होना चाहिए। इसके लिए राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषदों को पहल करनी चाहिए।

(11) समाहार

उपर्युक्त पंक्तियों में शिक्षक-शिक्षा में गुणवत्ता लाने और युगीन आवश्यकताओं की प्रतिपूर्ति हेतु कतिपय नये आयामों और सम्भावनाओं का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत किया गया है। यह सूची अन्तिम न होकर विचार गोष्ठी में पधारे विशेषज्ञों और विद्वानों के चिन्तन को उत्प्रेरित करने की दृष्टि से प्रस्तुत की गयी है। सारांशतः विचार के बिन्दु पृष्ठांकित हैं।

***

विचारणीय बिन्दु

- वर्तमान शिक्षक-शिक्षा के उद्देश्यों में कौन-कौन से परिवर्तन अपेक्षित हैं ? उन्हें किस प्रकार मूर्तरूप दिया जा सकता है ?
- शिक्षक-शिक्षा की राष्ट्रीय व्यवस्था कैसे सम्भव हैं ? इसके कार्यान्वयन की क्या रूपरेखा हो सकती है ?
- राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षक-शिक्षा के सामान्य केन्द्रिक का क्या स्वरूप होना चाहिए ?
- वर्तमान शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं को किस सीमा तक स्वायत्तता तथा स्वतन्त्रता प्रदान की जानी चाहिए ?
- शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं के लिए मानवीय और भौतिक संसाधनों के निर्धारण का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में क्या न्यूनतम मानक सुनिश्चित होना चाहिए ? इनकी आपूर्ति किस प्रकार सम्भव हो सकती है ?
- सेवापूर्व प्रशिक्षणार्थियों के चयन में राष्ट्रीय स्तर पर एकरूपता कैसे स्थापित की जा सकती है ? शिक्षक शिक्षा के प्रति सुयोग्य, सुरुचिसम्पन्न एवं समर्पित लोगों को किस प्रकार आकर्षित किया जाय ?
- शिक्षक-शिक्षा में प्रशिक्षुता प्रतिरूप का नियोजन और कार्यान्वयन कैसे किया जाय कि प्रशिक्षित शिक्षकों की बेकारी न हो और जो लोग इस व्यवसाय में आयें वे मनोयोगपूर्वक एकनिष्ठ दृष्टिकोण से कार्य कर सकें ?
- शिक्षक-शिक्षा के प्रचलित पाठ्यक्रम में आधुनिकीकरण की दृष्टि से परिवर्तन की क्या-क्या अपेक्षाएँ की जा सकती हैं ? सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पाठ्यक्रमों में क्या-क्या परिवर्तन अपेक्षित हैं जिससे शिक्षक शिक्षा विद्यालयीय समस्याओं के समाधान में सार्थक सिद्ध हो सके तथा छात्रों के विकास में समुचित नेतृत्व प्रदान कर सके ?
- शिक्षक-शिक्षा की मूल्यांकन प्रक्रिया में क्या-क्या परिवर्तन अपेक्षित हैं ? एक सम्पूर्ण शिक्षक के मूल्यांकन के लिए क्या-क्या मानक होने चाहिए ?
- सेवारत शिक्षकों के ज्ञान और अनुभव में निरन्तर विकास एवं विस्तार के लिए सेवारत शिक्षक-प्रशिक्षण की एक राष्ट्रीय योजना कैसे संचालित की जा सकती है ? इन शिक्षकों को दिनानुदिन की शैक्षणिक समस्याओं के शोधपरक समाधान की ओर कैसे मोड़ा जा सकता है ?

***

उत्तर प्रदेश में शिक्षक शिक्षा : वर्तमान स्थिति और व्यवस्था

शैक्षिक प्रक्रिया में शिक्षक की भूमिका निःसन्देह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। शिक्षक विभिन्न रूपों में छात्र की सहायता करता है और उसके सर्वांगीण विकास का प्रयास करता है। अध्यापक का व्यक्तित्व छात्र के व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। शिक्षा के सार्वजनीकरण के कारण उत्तरोत्तर बढ़ती छात्रों की संख्या के परिप्रेक्ष्य में शिक्षक की भूमिका आज और महत्वपूर्ण हो गयी है। शिक्षक की इस गुरुतर भूमिका को ध्यान में रखते हुए उसकी व्यावसयिक दक्षता के लिए शिक्षक शिक्षा की अपरिहार्यता स्वयं सिद्ध है।

1. उत्तर प्रदेश में शिक्षक-शिक्षा का विकास और विस्तार

उत्तर प्रदेश में शिक्षक प्रशिक्षण का कार्य उन्नीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में कुछ गैर सरकारी शैक्षिक संगठनों ने प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों के लिए शुरू किया था जिनमें कक्षा नायकीय पद्धति का उपयोग किया जाता था। सरकारी स्तर पर 1852 में आगरा, 1856 में मेरठ तथा 1857 में वाराणसी में नार्मलस्कूलों की स्थापना की गयी। 1882 में हण्टर कमीशन की शिफारिशों के फलस्वरूप प्रशिक्षण में विद्यालयों की संख्या में वृद्धि हुई। माध्यमिक शिक्षकों के प्रशिक्षण हेतु सर्वप्रथम 1896 में इलाहाबाद में गवर्नमेण्ट ट्रेनिंग कालेज की स्थापना की गयी। 1918 में बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी में टीचर्स ट्रेनिंग कालेज खुला तथा 1928 में अलीगढ़ विश्व विद्यालय में बी० टी० पाठ्यक्रम का श्रीगणेश हुआ। इसी वर्ष राजकीय महिला प्रशिक्षण महाविद्यालय लखनऊ में स्थापित हुआ जो बाद में इलाहाबाद में स्थानांतरित किया गया। 1932 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय में शिक्षाविभाग की स्थापना हुई। 1947-48 में शिक्षक-प्रशिक्षण के क्षेत्र में विशेष प्रगति हुई। इस वर्ष गैर सकारी संगठनों को प्रशिक्षण विद्यालय खोलने की अनुमति दी गयी जिससे अनेक एल० टी० तथा बी० टी० कालेजों की स्थापना हुई। 1938 ई० में इलाहाबाद में बुनियादी शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय की स्थापन हुई। 1947 से पूर्व शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाओं एवं प्रशिक्षणार्थियों की संख्या में वृद्धि अवश्य हुई किन्तु प्रशिक्षण की गुणवत्ता में अपेक्षित परिवर्तन नहीं लाया जा सका। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948-9) की अनुशंसाओं में प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों में सुधार, कक्षा शिक्षण अभ्यास पर बल, छात्रों का शिक्षण दक्षता पर आधारित मूल्यांकन, प्रशिक्षण संस्थाओं में अनुभवी प्रशिक्षकों की नियुक्ति एवं प्रशिक्षण में बोध कर्म करने पर अधिक बल दिया गया। प्रशिक्षण के क्षेत्र में इसकी सकारात्मक अनुक्रिया भी देखने को मिली।

2. शिक्षक-शिक्षा केक्षेत्र में एक नया मोड़ : आचार्य नरेन्द्रदेव समिति की संस्तुतियों का क्रियान्वयन :

उत्तर प्रदेशीय शिक्षक शिक्षा के क्षेत्र में प्रदेश सरकार द्वारा नियुक्त आचार्य नरेन्द्रदेव समिति (1939) की संस्तुतियों का महत्वपूर्ण योगदान है। इसकी अनुशंसा थी कि "इस प्रदेश में नवीन शिक्षा को सफलता अन्ततः नवनियुक्त अध्यापकों की योग्यता तथा विद्यालयों में प्रचलित-पाठ्य पुस्तकों के नवीनीकरण और उन्नयन पर निर्भर करेगी। शिक्षकों की व्यावसायिक क्षमता को बढ़ाने तथा नवीन शिक्षा प्रणाली में उनकी रुचि और उसके प्रति जागरुकता उत्पन्न करने के लिए आवश्यक है कि नये अध्यापकों को नवीन प्रणिक्षण प्रदान किया जाय तथा पुरानी पद्धति से प्रशिक्षित अध्यापकों के लिए पुनर्बोध पाठ्यक्रम की व्यवस्थ की जाय। यह भी उतना ही महत्वपूर्ण है कि अध्यापन विज्ञान और शिक्षण विधि पर पर्याप्त साहित्य तैयार किया जाय और उसे शिक्षकों को उपलब्ध भी कराया जाय।"......"हमारी यह भी आवश्यकता है कि हम विश्व के सभी देशों के शैक्षिक विचारों से सम्बन्धित आधुनिकतम आन्दोलनों से अवगत हो जायँ। अतः हमारा विचार है कि विभाग द्वारा प्रदेश के किसी स्थान पर केन्द्रीय अध्यापन विज्ञान संस्थान की स्थापना की जाय।"

उक्त सुझाव को व्यावहारिक रूप देने के लिए वर्ष 1948 में राजकीय प्रशिक्षण महाविद्यालय, इलाहाबाद को राजकीय सेण्ट्रल पेडागाजिकल इन्स्टीट्यूट के रूप में उच्चीकृत किया गया।कालांतर में इसके साथ पाठ्यक्रमीय शोध इकाई, मूल्यांकन इकाई, अँग्रेजी भाषा शिक्षण संस्थान, हिन्दी संस्थान, उपचारात्मक प्रशिक्षण इकाई आदि संलग्न होते गये। बाद में हिन्दी और अंग्रेजी-संस्थान अलग होकर स्वतंत्र संस्थानों के रूप में स्थापित हुए। समिति की अनुशंसाओं के आधार पर सन् 1947 में मनोविज्ञानशाला उ० प्र०, रचनात्मक प्रशिक्षण महाविद्यालय लखनऊ तथा शारीरिक शिक्षा प्रशिक्षण महाविद्यालयों की स्थापना हुई। वर्ष 1952-53 में बेसिक ट्रेनिंग कालेज की स्थापना हुई। 1953 में शिक्षा विभाग ने आठ और प्रशिक्षण महाविद्यालयों को मान्यता प्रदान की। सन् 1957 में आगरा विश्वविद्यालय ने 29 और गोरखपुर विश्वविद्यालय ने 16 प्रशिक्षण महाविद्यालयों को खोलने की अनुमति प्रदान की। इस प्रकार उत्तरोत्तर प्रशिक्षण संस्थाएँ बढ़ती गयीं। 1964 में राज्य शिक्षा संस्थान उत्तर प्रदेश तथा 1965 में राज्य विज्ञान शिक्षा संस्थान उत्तर प्रदेश की स्थापना की गयी।

3. वर्तमान परिप्रेक्ष्य

उत्तर प्रदेश में इस समय सेवापूर्व एवं सेवारत शिक्षक शिक्षा से संलग्न निम्नलिखित प्रकार की संस्थाएं कार्यरत हैं :

- पूर्व प्राथमिक प्रशिक्षण विद्यालय
- प्राथमिक प्रशिक्षण संस्थाएँ

- माध्यमिक शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाएँ
- अन्य विशिष्ट प्रशिक्षण संस्थाएँ
- राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद

(1) पूर्व प्राथमिक प्रशिक्षण विद्यालय

इस समय प्रदेश में राजकीय महिला शिशु प्रशिक्षण महाविद्यालय इलाहाबाद तथा आगरा और राजकीय गृह विज्ञान महिला प्रशिक्षण महाविद्यालय इलाहाबाद, में तीन प्रमुख संस्थाएँ हैं जिनमें कुल 99 महिला प्रशिक्षणार्थियों को प्रतिवर्ष प्रवेश दिया जाता है। प्रवेश के लिए लिखित परीक्षा, शैक्षिक योग्यता तथा साक्षात्कार के अंकों के आधार पर योग्यता सूची बनायी जाती है और तदनुसार प्रवेश दिया जाता है। यह पाठ्यक्रम दो वर्ष का होता है तथा उत्तीर्ण प्रशिक्षणार्थी को सी० टी० प्रमाण पत्र दिया जाता है। इनमें प्रवेश की न्यूनतम अर्हता इण्टरमीडिएट है। इनके पाठ्यक्रम पुराने हैं और 1970 के पश्चात् इनका पुनरीक्षण या संशोधन नहीं हुआ है।

(2) प्राथमिक प्रशिक्षण संस्थाएँ

प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों के प्रशिक्षण हेतु प्रदेश में राजकीय दीक्षा विद्यालय (महिला/पुरुष) खुले हैं। इस समय प्रदेश में इनकी संख्या 97 है। विभिन्न चरणों में प्रत्येक जनपद में जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान खोले जा रहे हैं। जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थाओं में भी सेवापूर्व विभाग के रूप में अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था है। इनके प्रभावी हो जाने पर आवश्यकतानुसार कतिपय दीक्षा विद्यालयों को विशेष रूप से निम्नस्तरीय संस्थाओं को समाप्त करने की योजना है। प्राथमिक और उच्च प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों के लिए यह प्रशिक्षण द्विवर्षीय है। प्रशिक्षणार्थियों का चयन प्रवेश परीक्षा तथा शैक्षिक योग्यता के आधार पर निर्मित योग्यता सूची से किया जाता है। प्रशिक्षण के उपरान्त परीक्षा में उत्तीर्ण परीक्षार्थियों को बी० टी० सी० का प्रमाण-पत्र प्रदान किया जाता हैं। ये सभी संस्थाएँ सरकारी हैं। बी० टी० सी० में प्रवेश की अर्हता वर्ष 1991 से स्नातक उपाधि हो गयी है। बी० टी० सी द्विवर्षीय पाठ्यक्रम वर्ष 1976 से लागू हुए हैं और राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) के परिप्रेक्ष्य में इनका संशोधन और पुनरीक्षण भी किया गया है।

(3) माध्यमिक शिक्षक प्रशिक्षण संस्थाएँ

माध्यमिक शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए प्रदेश में एल० टी० प्रशिक्षण महाविद्यालय, महाविद्यालयों के शिक्षा विभाग और विश्वविद्यालयों के शिक्षा संकाय कार्यरत हैं। एल० टी० प्रशिक्षण महाविद्यालय शिक्षा-विभाग उत्तर प्रदेश के नियन्त्रणाधीन हैं तथा महाविद्यालयों के बी० एड० प्रशिक्षण विश्वविद्यालयों के अधीन हैं। सम्प्रति प्रदेश में कुल 13 एल० टी० प्रशिक्षण महाविद्यालय (5 राजकीय तथा 8 निजी प्रबन्ध तन्त्र के अन्तर्गत) हैं। इनमें प्रतिवर्ष 1150 सेवापूर्व प्रशिक्षणार्थी प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। दस विश्वविद्यालयों के

शिक्षा विभागों तथा 101 महाविद्यालयों में बी० एड० की कक्षाएँ चल रही हैं। एल० टी० तथा बी० एड० के पाठ्यक्रम समकक्ष माने जाते हैं तथा इन दोनों की प्रशिक्षण अवधि एक वर्ष की है। एल० टी० तथा बी० एड० में प्रवेश की न्यूनतम अर्हता स्नातक उपाधि है। राष्ट्रीय शिक्षानीति के संकल्पों के अनुपालन में एल० टी० एवं बी० एड० दोनों पाठ्यक्रमों में प्रवेश परीक्षा के आधार पर हो रहे है। यद्यपि एल० टी० प्रवेश में लिखित एवं साक्षात्कार दोनों सम्मिलित हैं जब कि बी० एड० में प्रवेश का आधार केवल लिखित परीक्षा है। यह भी उल्लेख्य है कि राज्य में एल० टी० के एल० टी० (सामान्य), एल० टी० (बेसिक), एल० टी० (रचनात्मक), एल० टी० (गृह विज्ञान) अलग-अलग प्रशिक्षण पाठ्यक्रम थे परन्तु राष्ट्रीय शिक्षा नीति के सुझावों के आलोक और नेशनल काउंसिल फार टीचर एजूकेशन द्वारा रचित आदर्श पाठ्यक्रम (1989) के परिप्रेक्ष्य में वर्ष 1992-93 से एल० टी० का एक समन्वित पाठ्यक्रम लागू हो गया है। विश्वविद्यालयों के बी० एड० पाठ्यक्रम भी संशोधित होते रहते हैं परन्तु एन० सी० टी० ई० के पाठ्यक्रम के अनुसार किसी भी विश्वविद्यालय के बी० एड० पाठ्यक्रम का संशोधन प्रकाश में नहीं आया हैं।

(4) अन्य विशिष्ट प्रशिक्षण संस्थाएँ

प्रदेश में शारीरिक प्रशिक्षण के लिए राजकीय शारीरिक महिला प्रशिक्षण महाविद्यालय, इलाहाबाद और राजकीय शारीरिक प्रशिक्षण महाविद्यालय रामपुर, सी० पी० एड० तथा डी० पी० एड० के प्रशिक्षण प्रदान करते हैं। इसी प्रकार लखनऊ में क्रिश्चियन शारीरिक प्रशिक्षण महाविद्यालय, झाँसी में रानी लक्ष्मीबाई प्रशिक्षण महाविद्यालय कार्यरत हैं। डिग्री कालेज समोधपुर, जौनपुर में भी सी० पी० एड० का प्रशिक्षण दिया जाता है। सी० टी० (मूक और बधिर) के प्रशिक्षण की व्यवस्था लखनऊ में स्थित मूक-बधिर प्रशिक्षण महाविद्यालय में है। राष्ट्रीय महिला गृह विज्ञान प्रशिक्षण महाविद्यालय गृह विज्ञान के प्रशिक्षण की व्यवस्था करता है। अन्य विशिष्ट संस्थानों का उल्लेख राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के अन्तर्गत किया गया है।

(5) राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, उत्तर प्रदेश

शैक्षिक प्रक्रिया एवं शिक्षक-शिक्षा को गति प्रदान करने के लिए 1981 में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के अनुरूप प्रदेश में राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद की स्थापना की गयी। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित विभाग (संस्थान) कार्यरत हैं—

(1) प्रारम्भिक शिक्षा विभाग तथा अनौपचारिक शिक्षा एकक (राज्य शिक्षा संस्थान) इलाहाबाद

(2) मानविकी और सामाजिक विज्ञान विभाग (राजकीय केन्द्रीय अध्यापन विज्ञान संस्थान), इलाहाबाद

(3) विज्ञान और गणित विभाग (राज्य विज्ञान शिक्षा संस्थान), इलाहाबाद

(4) मनोविज्ञान और निर्देशन विभाग (मनोविज्ञानशाला), इलाहाबाद

(5) शैक्षिक तकनीकी विभाग (राज्य शैक्षिक तकनीकी संस्थान), लखनऊ

(6) श्रव्य-दृश्य और शिक्षा प्रसार विभाग (शिक्षा प्रसार विभाग), इलाहाबाद

(7) हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषा विभाग (राज्य हिन्दी संस्थान) वाराणसी

(8) अंग्रेजी तथा अन्य विदेशी भाषा विभाग (आंग्ल भाषा शिक्षण संस्थान), इलाहाबाद

(9) शैक्षिक प्रशासन और नियोजन विभाग, परिषद् मुख्यालय, लखनऊ

(10) पाठ्यक्रम और मूल्यांकन विभाग, परिषद् मुख्यालय, लखनऊ

(11) व्यवसायपरक विभाग, परिषद् मुख्यालय, लखनऊ

(12) अध्यापक शिक्षा विभाग (जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान), प्रदेश के विभिन्न जनपदों में स्थापित

(13) विज्ञान किट निर्माणशाला,

ज्ञातव्य है कि परिषद का मुख्यालय निशातगंज, लखनऊ में स्थित है। उपर्युक्त विभागों में राजकीय केन्द्रीय अध्यापन विज्ञान संस्थान (राजकीय सी० पी० आई०), इलाहाबाद में एल० टी० का प्रशिक्षण प्रदान किया जाता हैं। मनोविज्ञान और निर्देशन विभाग (मनोविज्ञान शाला), इलाहाबाद में डिप्लोमा इन गाइडेंस साईकालोजी (डी० जी० पी०) का पूर्ण सत्रीय सेवा पूर्व प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। यह प्रशिक्षण स्कूल मनोवैज्ञानिकों को तैयार करता है। परिषद के अधीन सभी संस्थाएँ अपनी प्रकृति के अनुसार शैक्षिक शोध, अध्ययन, सर्वेक्षण तथा अन्य विशिष्ट शैक्षिक कार्यों के अतिरिक्त उभरती हुई शैक्षिक आवश्यकताओं के सन्दर्भ में अध्यापकों के सेवाकालीन लघु प्रशिक्षण और पुनर्बोधात्मक कार्यक्रमों की व्यवस्था करती हैं।

जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान

अध्यापक शिक्षा की पुनर्रचना और पुनर्गठन की आवश्यकता की पूर्ति हेतु केन्द्र पुरोनिधानित योजनान्तर्गत भारत सरकार की शतप्रतिशत सहायता से प्रदेश के समस्त जनपदों में अध्यापक शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रमों के विभिन्न स्तरों के शिक्षकों, कार्यकर्त्ताओं और अन्य कर्मियों के शैक्षिक स्तर में सुधार तथा उन्नयन के उद्देश्य से प्रथम और द्वितीय चरण में क्रमशः बीस-बीस जनपदों तथा तृतीय चरण में बाईस जनपदों में जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना की जा चुकी है। प्रत्येक संस्थान के प्राचार्य उप प्राचार्य, वरिष्ठ प्रवक्ता (6), तथा प्रवक्ता (17) सहित शिक्षक एवं शिक्षकेतर कर्मचारियों के कुल 48 पद सृजित हैं जिन पर नियमानुसार नियुक्ति की कार्यवाही प्रगति पर है।

(4) प्रदेश में सेवापूर्व और सेवारत प्रशिक्षण की स्थिति

जैसा कि पूर्व में उल्लेख किया जा चुका है, पूर्व प्राथमिक, प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर प्रदेश में प्रशिक्षण की अनेक संस्थाएँ कार्यरत हैं और आवश्यकता से अधिक प्रतिवर्ष विभिन्न स्तर के प्रशिक्षणार्थी प्रशिक्षित हो रहे हैं। जहाँ तक सेवारत अध्यापकों के प्रशिक्षण का प्रकरण है, राज्य शिक्षा संस्थान, उत्तर प्रदेश के माध्यम से प्राथमिक स्तर के अप्रशिक्षित अध्यापकों का पत्राचार के माध्यम से प्रशिक्षण की व्यवस्था है। माध्यमिक स्तर के अप्रशिक्षित अध्यापकों के सेवारत एल० टी० प्रशिक्षण की व्यवस्था भी आवश्यकतानुसार समय-समय पर की जाती रही है। वर्ष 1979-80 के पश्चात इस प्रकार का कोई कार्यक्रम अथवा व्यवस्था नहीं हो पाई है।

सेवारत लघु प्रशिक्षण के सन्दर्भ में परिषद के सभी विभाग विषयगत उभरती हुई शैक्षिक आवश्यकताओं के सन्दर्भ में प्रशिक्षण आयोजित करते रहते हैं। कुछ प्रशिक्षण यूनीसेफ सहायता प्राप्त परियोजनाओं के अन्तर्गत जैसे—जनसंख्या शिक्षा, क्षेत्र सघन परियोजना, पर्यावरण सुरक्षा आदि पर आयोजित किये गये हैं।

सेवाकालीन प्रशिक्षण के सन्दर्भ में मानव संसाधन विकास मन्त्रालय द्वारा एन० सी० ई० आर० टी० नई दिल्ली के तत्त्वावधान में वर्ष 1986 से 1989 तक राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद द्वारा प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षकों के लिए वृहत् सेवा कालीन शिक्षक प्रशिक्षण का आयोजन किया गया था जिसमें कुल मिलाकर 2,46,860 शिक्षक प्रशिक्षित हुए थे।

माध्यमिक स्तर के सेवारत शिक्षकों के लिए नये सिद्धान्तों, तकनीकों एवं प्रशिक्षण की नई विधियों से परिचित कराने के लिए वर्ष 1980 में पुनर्बोधात्मक प्रशिक्षण के चार केन्द्र तथा एन० सी० ई० आर० टी० के सहयोग से सतत शिक्षा कार्यक्रम के नाम से 9 केन्द्रों की स्थापना की गयी जिन्हें बढ़ाकर 1984 में 12 कर दिया गया। इनके माध्यम से वर्ष पर्यन्त 10 से 15 फेरों में प्रति फेरा 50-50 माध्यमिक कक्षाओं के अध्यापकों के प्रशिक्षण का लक्ष्य रखा गया था। यह व्यवस्था वर्ष 1987 तक चली।

समग्र रूप से प्राथमिक शिक्षा के अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था जनपद स्तर पर जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थानों के माध्यम से की जा रही है परन्तु माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में इस प्रकार की कोई समन्वित और सुनियोजित योजना का अभाव है।

(5) उत्तर प्रदेश में शिक्षक प्रशिक्षण सम्बन्धी कतिपय बाधाएँ और उनका निराकरण

(क) सेवापूर्व प्रशिक्षण—

(1) प्राथमिक स्तर—जैसा कि उपर्युक्त पंक्तियों में उल्लेख किया गया है, प्राथमिक शिक्षा के सन्दर्भ में प्रशिक्षण संस्थाओं की व्यवस्था, प्रबन्ध, पाठ्यक्रम आदि में एकरूपता है और प्रशिक्षण को

स्तरीय बनाने के लिए प्रत्येक जनपद में जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थाओं की स्थापना हुई है फिर भी पूर्व प्राथमिक अध्यापकों के प्रशिक्षण के पाठ्यक्रमों का आधुनिकीकरण अब तक नहीं हो सका है। इनके पुनरीक्षण की आवश्यकता है। जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना तो हो चुकी हैं परन्तु इनमें पदों की प्रतिपूर्ति न होने के कारण इनकी क्रियाशीलता बाधित है। इस दिशा में सक्रिय प्रयास की आवश्यकता है।

(2) **माध्यमिक स्तर**—जहाँ तक माध्यमिक स्तर के शिक्षक शिक्षा का प्रश्न है, प्रबन्ध और व्यवस्था की दृष्टि से सभी स्तरों पर एकरूपता का अभाव है। राज्य में एल० टी० और बी० एड० दो प्रकार के प्रशिक्षण हैं जिनके पाठ्यक्रमों में भी पर्याप्त भिन्नता वर्तमान है। एल० टी० प्रशिक्षण महाविद्यालयों में कार्यरत शिक्षक प्रशिक्षकों की सेवा शर्तें भी बी० एड० से भिन्न हैं। इसी प्रकार शिक्षक प्रशिक्षण की गुणवत्ता को सुनिश्चित करने का कोई अभिकरण अब तक स्थापित नहीं किया जा सका है। राज्य में प्राथमिक और माध्यमिक दोनों स्तरों पर प्रतिवर्ष प्रशिक्षित होने वाले अध्यापकों की संख्या और उनकी आपूर्ति में तालमेल नहीं है। इससे इस क्षेत्र में आकर्षण का अभाव है और प्रशिक्षण की गुणवत्ता भी बाधित हो रही है। बहुत से प्रशिक्षण महाविद्यालय और महाविद्यालयों से सम्बद्ध शिक्षा विभाग न्यूनतम मानवीय और भौतिक संसाधनों से अभावग्रस्त हैं। अतः शिक्षक शिक्षा के स्तरोन्नयन हेतु निम्नलिखित सुझाव विचारणीय हैं :—

(1) शिक्षक शिक्षा की राज्य स्तरीय व्यवस्था

शिक्षक शिक्षा को एक राज्य स्तरीय शिक्षा क्रम की आवश्यकता है, जिसमें एक सामान्य केन्द्रिक और अन्य क्षेत्रों के विषय में लचीलापन रहे, जिससे विश्वविद्यालय अपनी आवश्यकता के अनुसार 10 से 20 प्रतिशत तक परिवर्तन कर सकें। इसके लिए राज्य स्तर पर स्टेट काउंसिल फार टीचर एजूकेशन की स्थापना की जाय। यह संस्था शिक्षक शिक्षा की गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए उत्तरदायी रहे। शिक्षा विभाग के नियन्त्रणाधीन प्रशिक्षण महाविद्यालयों का नियन्त्रण राज्य शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद के अधीन रखा जाय।

(2) महाविद्यालयों से सम्बद्ध शिक्षक शिक्षा विभागों तथा विश्वविद्यालयों के शिक्षा संकायों को स्वतन्त्र अस्तित्व प्रदान करना

महाविद्यालयों से सम्बद्ध शिक्षा विभागों और विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध शिक्षा संकायों की स्थिति अन्य विभागों और सम्भागों जैसी है और शिक्षक के विकास के अपेक्षित परिवेश का अभाव है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि इन्हें स्वतन्त्र शिक्षा महाविद्यालय के रूप में विकसित किया जाय।

(3) शिक्षक शिक्षा संस्थाओं के लिए मानवीय और भौतिक संसाधनों की आपूर्ति

प्रदेश के अधिकांश प्रशिक्षण महाविद्यालय और महाविद्यालयों के शिक्षक शिक्षा विभाग न्यूनतम भौतिक

और मानवीय संसाधनों से अभावग्रस्त है। आवश्यकता है कि इनके मानकों का निर्धारण किया जाय और चरणबद्ध रूप से संस्थाओं को न्यूनतम संसाधनों से परिपूरित किया जाय।

(4) शिक्षक शिक्षा की संस्थाओं की प्रबन्ध व्यवस्था, शिक्षक प्रशिक्षकों की योग्यता, सेवाशर्तों आदि में एकरूपता स्थापित करना

सम्प्रति प्रदेश में माध्यमिक स्तर पर एल० टी० और बी० एड० दो प्रकार के प्रशिक्षण संचालित हैं। इनकी व्यवस्था, प्रबन्ध, शिक्षक प्रशिक्षकों के चयन और उनकी सेवाशर्तों में एकरूपता स्थापित करने की आवश्यकता है।

(5) पाठ्यक्रमों का आधुनिकीकरण और उनका प्रभावी क्रियान्वयन

शिक्षा विभाग द्वारा संचालित एल० टी० प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम में एकरूपता है और उसका आधुनिकीकरण भी हो गया है। किन्तु अनेक विश्वविद्यालयों के बी० एड० पाठ्यक्रमों के आधुनिकीकरण और उनमें पारस्परिक एकरूपता स्थापित करने की आवश्यकता है।

प्रदेश के सन्दर्भ में शिक्षक शिक्षा की कतिपय बाधाओं और उनके निराकरण के उपायों का संकेत दिया गया है। निश्चित रूप में बहुत से बिन्दु संगोष्ठी में विचार विनिमय के फलस्वरूप उभरेंगे। सेवापूर्व प्रशिक्षण की गुणवत्ता पर विचार करने के साथ-साथ सेवारत प्रशिक्षण की स्थिति और प्रभावी प्रतिदर्श की सम्भावनाओं पर भी विचार करना उपयुक्त होगा क्योंकि वह हमारी सबसे कमजोर कड़ी है, जबकि उसका महत्व सर्वाधिक है।

***

पूर्व-प्राथमिक प्रशिक्षण—भावी स्वरूप

किरन बाला पाण्डेय
प्राचार्या
राजकीय शिशु प्रशिक्षण महिला महाविद्यालय
इलाहाबाद

किसी राष्ट्र की प्रगति और विकास वहाँ की शिक्षा योजना पर आधारित है। हमारे देश में भी स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात शिक्षा जगत में क्रान्ति आई। शिक्षाविदों ने बाल शिक्षा के महत्व को समझा और उसे एक नया रूप देने का प्रयास किया। उत्तर प्रदेश सरकार ने भी शिशु शिक्षा के महत्व को समझते हुए सन् 1949 में इलाहाबाद नगर में एच० टी० सी० स्तर के शिशु प्रशिक्षण महाविद्यालय की स्थापना की। सन् 1951 में इसके स्तर में उन्नयन कर इसे सी० टी० स्तर का कर दिया गया। तब से आज तक यह संस्था उसी स्तर पर कार्यरत है। यह शिशु प्रशिक्षण की प्रदेश में सबसे पुरानी संस्था है। जिस समय इस संस्था की स्थापना की गयी थी, उस समय भारत में शिशु-शिक्षा का प्रचार और प्रसार बहुत कम हुआ था। उस समय इस संस्था से अपेक्षा की गयी थी कि यह प्रदेश में शिशु-शिक्षा को गति और सही दिशा प्रदान करेगी। किन्तु अनेक प्रशासकीय कारणों एवं किराये का विद्यालय भवन होने के कारण यह अपने लक्ष्य प्राप्ति में पूरी तरह सफल नहीं हो सकी।

इस प्रणिक्षण महाविद्यालय का मुख्य उद्देश्य छात्राध्यापिकाओं की शिशु शिक्षा में इस रूप में प्रशिक्षित करना है कि वे शिशुओं की देख-भाल सही तरह (Proper handling) से कर सकें। वे शिशु-विकास के विभिन्न सोपानों की समझकर उनके लिए एक ऐसा शैक्षिक और समृद्ध वातावरण का सृजन कर सकें जहाँ शिशुओं की अन्तरनिहित प्रतिभाएँ स्वतः सहज रूप में प्रकाशित हो सकें। अतः इस प्रशिक्षण संस्था से संलग्न एक शिशुशाला भी है।

छात्राध्यापिकाओं के दृष्टिकोण को व्यापक बनाने और उनके सैद्धान्तिक ज्ञान को व्यावहारिक रूप देने के लिये यहाँ अनेक पाठ्यान्तर क्रिया कलाप भी समय-समय पर आयोजित किये जाते हैं। बाल-शिक्षाविदों, बाल मनोवैज्ञानिकों, बाल रोग चिकित्सकों की वार्ताएँ, विभिन्न प्रतियोगिताओं का आयोजन, राष्ट्रीय एवं सामाजिक पर्वों को हर्षोल्लास से मनाना, भ्रमण, सांस्कृतिक एवं क्रीड़ा समारोहों का आयोजन, शैक्षिक संगोष्ठी तथा कार्यशालाएँ, शैक्षिक उपकरणों की प्रदर्शनी लगाना आदि कार्यक्रम इस संस्था में समय-समय पर होते रहते हैं।

सी० टी० प्रशिक्षण को बी० टी० सी० प्रशिक्षण के रूप में परिवर्तित करने से पूर्व निम्नलिखित तथ्यों पर विचारोपरान्त ही भावी स्वरूप का निर्धारण किया जाय :—

(1) शिशु-प्रशिक्षक विद्यालयों की स्थापना किन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए की गई है इसकी कितनी उपयोगिता सिद्ध हुई।

(2) शिशु विद्यालयों का क्या महत्व है, पाँचवीं पंचवर्षीय योजना से लेकर सातवीं पंचवर्षीय योजना में लिए गए निर्णय एवं कार्य योजना।

मैं विभाग का ध्यान इस ओर भी आकर्षित करना चाहूँगी कि एल० टी० शिक्षक/शिक्षिकायें माध्यमिक कक्षाओं में शिक्षण कार्य करती हैं, बी० टी० सी० प्रशिक्षित शिक्षिकायें पूर्व माध्यमिक, प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षण कार्य करती हैं। इस सन्दर्भ में यह विचारणीय हैं कि शिशुओं का शिक्षण कार्य (पूर्व प्राथमिक स्तर पर) किनके द्वारा कराया जायेगा ? यह सर्वविदित है कि प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च-शिक्षा की आधार-शिला पूर्व प्राथमिक शिक्षा है।

विभाग के शिक्षाविद इस बात से इन्कार नहीं करेंगे कि आज युवा वर्ग में व्याप्त आक्रोश, हिंसा, भ्रष्टाचार, उच्छृङ्खलता, वर्गवाद तथा साम्प्रदायिकता की भड़कती आग के पीछे जीवन में उनकी असफलता है और इसका मूल कारण पूर्व प्राथमिक स्तर पर समुचित शिक्षा का अभाव है। यहाँ यह भी विचारणीय है कि प्रदेश में कितनी राजकीय शिशुशालायें हैं जिनमें बच्चों की रुचि, अभिरुचि एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षण-कार्य किया जाता है।

आज की वर्तमान परिस्थिति में शिशु-शिक्षा पर गहन मनन, शोध और अध्ययन की आवश्यकता है। प्रत्येक जिले में एक आदर्श राजकीय शिशुशाला समाज की प्रथम आवश्यकता है।

शिक्षा में सदैव स्तरोन्नयन की बात की जाती रही है। सी० टी० (शिशु शिक्षा) को बी० टी० सी० स्तर में परिणत करके पहली बार स्तरोअवनयन की बात कही गयी है।

एक ओर तो माध्यमिक विद्यालयों में सी० टी० डाइंग कैडर घोषित किये जाने के कारण सी० टी० प्रशिक्षण समाप्त करने की बात कही गयी है और दूसरी ओर माध्यमिक स्तर पर नर्सरी ट्रेड चलाकर अप्रशिक्षित शिशु प्रशिक्षित छात्राओं की संख्या में वृद्धि की जा रही है। नर्सरी ट्रेड में उत्तीर्ण छात्राओं के लिये आगे उच्च स्तर के किसी प्रशिक्षण के अवसर उपलब्ध नहीं होंगे।

इसी के अनुरूप भावी योजना में सी० टी० (शिशु शिक्षा) प्रशिक्षण का उन्नयन कर उसे एल० टी० (डिप्लोमा इन अर्ली चाइल्डहुड) प्रशिक्षण में परिणित किया जाय एवं उन्हें एल० टी० वेतनक्रम दिया जाय, न कि बी० टी० सी० स्तर में एक विशेष विषय (प्रयोगिक) बढ़ाकर शिशु शिक्षा की औपचारिकता को पूर्ण मान लिया जाय। आज की वर्तमान परिस्थिति में शिशु शिक्षा पर गहन चिन्तन और अध्ययन की आवश्यकता है। तदनुसार प्रस्तावित कार्यक्रम आगे प्रस्तुत है :—

राजकीय शिशु प्रशिक्षण महाविद्यालय के उच्चीकरण हेतु औचित्य

(1) राष्ट्रीय शिक्षा नीति में शिशु शिक्षा पर विशेष बल दिया गया है। इससे पूर्व भी सभी शिक्षा आयोगों ने शैशव काल (पूर्व प्राथमिक शिक्षा) के विस्तार व विकास पर विशेष बल दिया है। बाल शिक्षाविदों, मनोवैज्ञानिकों ने भी यह स्वीकार किया है कि 2½ से 5 वर्ष में प्राप्त आदर्श तथा वातावरण शिशु के चरित्र गठन व व्यक्तित्व निर्माण में प्रभावी भूमिका रखते हैं।

(2) शैशव काल जीवन का सबसे महत्वपूर्ण समय है। इस समय शिशु के विकास की गति और उसकी ग्रहणशीलता अत्यन्त तीव्र होती है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि छः वर्ष से पूर्व के बालक/बालिकाओं के लिये निर्माणकारी, स्वस्थ एवं अच्छी आदतों के लिए उनकी रचनात्मक क्षमताओं के विकास की सम्भावनाओं से युक्त पाठ्यक्रम लेकर शिशु शिक्षा की योजना की जाय।

(3) शिक्षाविदों, मनोवैज्ञानिकों ने तथा 1986 की राष्ट्र स्तरीय संस्तुति में यह माना गया है कि पूर्व प्रारम्भिक कक्षाओं में उच्च शैक्षिक योग्यता वाली शिक्षिकाओं की नियुक्ति की जाय जिससे शिशुओं का सर्वांङ्गीण और चतुर्मुखी विकास वर्तमान मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में किया जा सके जैसा कि अन्य प्रदेशों में है।

(4) प्रदेश में बालबाड़ी, आँगनबाड़ी एवं शिशु शालाओं की निरन्तर वृद्धि हो रही है इनके लिए भी प्रशिक्षित शिक्षिकाओं का होना नितान्त आवश्यक है। इसके अतिरिक्त आँगनबाड़ी सुपरवाइजर्स एवं प्रभारी को भी शिशु शिक्षा में प्रशिक्षित होना अपेक्षित है।

(5) माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा के अन्तर्गत प्रदेश के अनेक इण्टरमीडिएट विद्यालयों में नर्सरी ट्रेड विषय चलाया जा रहा है, वहाँ अनिवार्य रूप से शिशु विहारों की स्थापना आदर्श शिशु शाला के रूप में की जा सके।

(6) नर्सरी ट्रेड के सफल संचालन के लिए शिशु प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षिकाओं की नियुक्ति एल० टी० वेतनक्रम में की जाय जो शिशु प्रशिक्षण महाविद्यालय में ही सम्भव हो सकता है।

(7) अब तक सी० टी० प्रशिक्षण तथा उनका वेतनक्रम दोनों ही बी० टी० सी० से उच्च स्तर के थे। इसी आधार पर सी० टी० वेतनक्रम की शिक्षिकाओं का संविलन शासन स्तर पर एल० टी० वेतनक्रम में किया गया है।

(8) राजाज्ञा सं० 3490/152–91 27 (58) 88 टी० सी० दिनांक 19 जनवरी, 1992 द्वारा शिक्षा विभाग में सी० टी० ग्रेड समाप्त कर कार्यरत शिक्षिकाओं को एल० टी० वेतनक्रम ही स्वीकृत किया गया है।

प्रशिक्षण संस्थान का भावी स्वरूप

विद्यालय के वर्तमान स्वरूप में विस्तार के लिए कुछ नवीन विभागों का सृजन भी अपेक्षित होगा :—

(1) शोध विभाग :

(1) इस उच्चीकृत (upgraded) प्रशिक्षण संस्था से संलग्न एक शोध-विभाग भी खोला जाय जो शिशु

शिक्षा के शैक्षिक स्वरूप के विकास को गतिशील करें। अभी तक हमें विदेशों में हुए शोध अध्ययन तथा पुस्तकों पर ही निर्भर रहना पड़ता है, अतएव भारतीय पृष्ठ भूमि में बाल विकास एवं बाल शिक्षा पर अध्ययन कर बाल-शिक्षा से सम्बन्धित सामग्री विकसित की जाय यथा—

(अ) शिशु साहित्य (गीत, कहानी, कविता, बाल नाटक, अभिनय, खेल) आदि का सृजन, संकलन, सम्पादन, अनुवाद तथा प्रकाशन कार्य (उत्कृष्ट बाल साहित्य से)।

(ब) शैक्षिक खेलोपकरणों का निर्माण कार्य।

(स) शिशु विकास के विभिन्न पहलुओं पर अध्ययन एवं दृश्य श्रव्य सामग्री तैयार करना।

(द) समय-समय पर पुनर्बोधात्मक एवं सेवाकालीन प्रशिक्षण का आयोजन भी इस महाविद्यालय द्वारा किया जाय।

(2) प्रकाशन—

(1) प्राप्त सामग्री को समय-समय पर प्रकाशित किया जायगा।

(2) सम्पूर्ण प्रदेश में संचालित शिशु-संस्थाओं में एकरूपता लाने के लिये मार्ग दर्शन करना।

(3) पंजीकरण तथा मान्यता प्रदान करना—

प्रदेश में व्यक्तिगत (Private) रूप से चलायी जा रही तथा कथित नर्सरी विद्यालयों, जो बच्चों का आर्थिक व मनोवैज्ञानिक रूप से दोहन कर रहे हैं, पर नियन्त्रण करने का कार्य। इन संस्थाओं के लिये मानक निर्धारण का कार्य एवं इन मानकों पर खरे उतरने वाली संस्थाओं का पंजीकरण और मान्यता प्रदान करने का कार्य भी यह महाविद्यालय सम्पन्न करें जिससे शिशु-शिक्षा में अवांछित शिक्षा स्वरूप को नियन्त्रित किया जा सके।

(4) सहसम्बन्ध स्थापित करना—

राज्य स्तर पर चलायी जा रही समस्त पूर्व प्राथमिक स्तर की योजनाओं को इसी महाविद्यालय द्वारा संचालित किया जाय। राज्य शिक्षा संस्थान तथा शिक्षा प्रसार विभाग से इस संस्था का सह-सम्बन्ध स्थापित किया जाना चाहिए।

इस प्रकार उच्चीकृत (upgraded) किया गया यह महाविद्यालय पूर्व प्राथमिक शिक्षा में प्रशिक्षण के साथ-साथ मार्ग दर्शन, शोध एवं नियोजन का कार्य कर सकेगा।

***

सेवापूर्व प्रशिक्षण की वर्तमान स्थिति

—डॉ० शशिप्रभा भदौरिया
प्राचार्या, जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान,
लखनऊ

वर्तमान परिवर्तित परिवेश में प्रारम्भिक स्तरीय अध्यापक का दायित्व अत्यधिक बढ़ गया है। उसे शिक्षा के प्रसार तथा उन्नयन, विज्ञान एवं तकनीकी ज्ञान के संवर्द्धन, समाजोपयोगी उत्पादक कार्य के सफल कार्यान्वयन में सहयोग देकर समाज तथा विद्यालय को समीप लाना है तथा जन-समुदाय का सही अर्थों में नेतृत्व करना है।

प्रारम्भिक स्तरीय अध्यापक अपनी भूमिका का निर्वाह सफलतापूर्वक कर सकें, इस हेतु आवश्यक है कि प्रारम्भिक स्तरीय प्रशिक्षण स्तर पर ही भावी शिक्षकों को उनके महत्वपूर्ण दायित्वों से भलीभाँति अवगत करा दिया जाय। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुये उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा द्विवर्षीय बी० टी० सी० प्रशिक्षण का अनुमोदन किया गया। यह प्रशिक्षण सन् 1976 से प्रभावी है।

इस प्रशिक्षण में प्रवेश हेतु न्यूनतम योग्यता स्नातक है। लिखित प्रवेश परीक्षा तथा साक्षात्कार के आधार पर वरीयता सूची के अनुसार प्रवेश दिया जाता है। लखनऊ में कुल 35 स्थान है जिसमें जिला शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान में 10 सामान्य तथा 5 उर्दू के प्रशिक्षणार्थी हैं तथा क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान लखनऊ में 10 सामान्य प्रशिक्षणार्थी हैं।

उद्देश्य एवं विशेषताएँ

- प्रशिक्षण में विज्ञान सैद्धान्तिक के अन्तर्गत प्रारम्भिक शिक्षा की अभिनव प्रवृत्तियों एवं समस्याओं का समावेश किया गया है।
- पाठ्यक्रम में वर्णित सभी विषय अनिवार्य हैं जिससे छात्राध्यापक प्रारम्भिक स्तर पर सभी विषय पढ़ने में सक्षम हो।
- हिन्दी, गणित, सामाजिक अध्ययन तथा विज्ञान विषयों को आधारभूत विषय मानकर दोनों वर्ष के पाठ्यक्रम में इनके अध्ययन की व्यवस्था की गई है।

- कृषि, शिल्प, गृहविज्ञान का अध्ययन भी दोनों वर्ष होगा तथा उनके प्रयोगात्मक पक्ष पर अधिक बल दिया गया।

- पाठ्यक्रम में त्रिभाषा सूत्र को दृष्टिगत रखते हुए हिन्दी के अतिरिक्त एक अन्य भाषा के अध्ययन की सुविधा प्रदत्त है।

- कला को स्वतन्त्र विषय के रूप में मान्यता दी गई है।

- पाठ्यक्रम में नैतिक शिक्षा को समुचित स्थान दिया गया है जिससे छात्राध्यापक विद्यार्थियों में चरित्र निर्माण और मानव मूल्यों के प्रति आस्था जागृत कर सके।

- पाठ्यक्रम में प्रारम्भिक शिक्षा के विभिन्न पाठ्य विषयों की विषय सामग्री के पृथक से अध्ययन का प्रावधान नहीं है, अपितु विषय वस्तु के विभिन्न प्रकरणों को पढ़ाने की विधियों पर बल दिया गया है जिससे शिक्षण विधियों का विषयानुकूल एवं स्तरानुकूल प्रयोग करने की क्षमता विकसित हो सके।

- पाठ्यक्रम में शिक्षण अभ्यास पर अत्यधिक बल दिया गया है। शिक्षण अभ्यास के पूर्व की तैयारी शिक्षण अभ्यास तथा शिक्षण अभ्यास के पश्चात का अनुसरण कार्य, इसके प्रमुख अंग हैं। दोनों वर्षों में कुल 89 पाठ पढ़ाने होते हैं, प्रथम वर्ष में 47 पाठ तथा द्वितीय वर्ष में 42 पाठ पढ़ाने होते हैं। अनिवार्य विषयों में 16–16 पाठ तथा ऐच्छिक या अन्य विषयों के 5–5 पाठों का कक्षा शिक्षण करना होता है।

- पाठ्यक्रम मे सामुदायिक सहभागिता एवं अनौपचारिक शिक्षा से सम्बन्धित कार्य को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। प्रथम वर्ष में सामुदायिक कार्य एवं संगीत तथा 2 कैप्सूल अनौपचारिक शिक्षा से सम्बन्धित हैं। इसी प्रकार द्वितीय वर्ष में भी 2 कैप्सूल प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के सम्बन्ध में बनाने पड़ते हैं।

यद्यपि बी० टी० सी० का वर्तमान पाठ्यक्रम सभी दृष्टियों, जैसे विषय ज्ञान, शिक्षण-सिद्धान्त, शिक्षण विधियों में पर्याप्त समृद्ध है किन्तु प्रशिक्षित शिक्षक जब अपने कार्य क्षेत्र में पदार्पण करते हैं तो विद्यालय में बहुधा स्वयं को अनुभवहीन व अज्ञानी अनुभव करते हैं। छात्रों का प्रवेश, उपस्थिति पंजिका का रख-रखाव, परीक्षा संचालन, अभिलेख तैयार करना आदि एक दुरूह समस्या बन जाती है। प्रशिक्षण अवधि में छात्राध्यापकों को अपने भावी कार्यक्षेत्र के लिए पूर्ण रूपेण तैयार करना है जिससे वे सभी कार्यों को पूर्ण आत्म विश्वास एवं उत्तरदायित्व के साथ प्रतिपादित कर सकें।

इस सम्बन्ध में बी० टी० सी० पाठ्यक्रम में परिवर्तन एवं संशोधन हेतु कुछ सुझाव प्रस्तुत कर रही हूँ।

प्राथमिक शिक्षकों के पाठ्यक्रम में विद्यालयीय अनुभव कार्यक्रम को जोड़ना प्रशिक्षणार्थियों के भावी कार्य क्षेत्र में कुशल कार्य संचालन हेतु एक अतिआवश्यक घटक है। यह कार्यक्रम भावी शिक्षकों को प्राथमिक विद्यालयों के बालकों के समुचित मानसिक विकास के लिये घर, स्कूल व समाज से निकट सम्बन्ध स्थापित

करने में सहायता प्रदान करता है। साथ ही प्रशिक्षण सम्बन्धी सैद्धान्तिक ज्ञान को शिक्षण कार्य एवं विद्यालय प्रशासन में प्रयोग करने का सुअवसर देता है।

शिक्षक-प्रशिक्षु का दायित्व कुछ पाठ संकेत बनाकर कक्षा शिक्षण करना मात्र ही नहीं है वरन् प्रशिक्षण काल में उसे इस योग्य बनाना भी आवश्यक है कि वह कक्षा शिक्षण के अतिरिक्त अन्य विद्यालयीय कार्यक्रमों के संचालन में भी प्रशिक्षित हो जाय। इसके लिये उसे किसी विद्यालय से एक निश्चित समय तक सम्बद्ध करना शिक्षक-प्रशिक्षण पाठ्यक्रम का महत्वपूर्ण दायित्व है। इस अवधि में वह विद्यालय क्रियाकलापों जैसे विद्यालय में शिक्षण कार्य एवं पाठ्य सहगामी क्रियाकलापों का नियोजन तथा संचालन, छात्र मूल्यांकन आदि का व्यावहारिक अनुभव प्राप्त कर सकता है। अत: प्राथमिक शिक्षकों के सेवापूर्व प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में विद्यालयीय कार्यानुभव को जोड़ना प्रासंगिक तो है ही गुणात्मकता की दृष्टि से आवश्यक भी है। जिन परिस्थितियों में आगे चलकर कार्य करना है, जो समस्यायें प्राथमिक शिक्षक के रूप आगे चलकर उन्हें झेलनी है, उनका साक्षात्कार कराना एवं उनके निदान के रास्ते दिखाना टीचर एजूकेटर का दायित्व बनता है। विद्यालयीय कार्यानुभव की प्रक्रिया पाठ्यक्रम में जोड़ने के लिये कुछ इस प्रकार का कार्यक्रम निर्धारित करना उचित होगा।

- बी० टी० सी० प्रशिक्षण द्विवर्षीय प्रशिक्षण है। इसलिये प्रथम वर्ष में एक माह के लिये तथा द्वितीय वर्ष में दो माह के लिये छात्राध्यापकों को प्राथमिक विद्यालयों से सम्बद्ध कर उन्हें विद्यालयीय अनुभवों से अवगत कराया जा सकता है।

- प्रथम वर्ष में उन्हें अर्द्धवार्षिक परीक्षा के समय सम्बद्ध किया जाय तथा प्रश्न पत्र निर्माण, परीक्षा संचालन उत्तर पुस्तिका के मूल्यांकन, परीक्षाफल निर्माण, परीक्षा पंजिकाओं के रख-रखाव आदि के विषय में व्यावहारिक अनुभव प्रदान कराया जाय।

- द्वितीय वर्ष के दो माह के सम्बद्धीकरण को दो भागों में विभाजित किया जाय। एक माह के लिये जुलाई में प्रवेश के समय तथा 4 सप्ताह के लिये उस माह में जब खेल-कूद प्रतियोगिताओं का आयोजन हो रहा है। इन कार्यक्रमों में प्रतिभाग कराने से छात्राध्यापक जनपदीय, मण्डलीय खेल-कूद प्रतियोगिताओं एवं रैलियों के आयोजन में रुचि लेने के साथ-साथ इनके क्रियान्वयन की शैली और उनमें परिवर्तन, परिवर्द्धन के दृष्टिकोण का विकास कर सकेंगे।

- विद्यालय अनुभव कार्यक्रम में जाने से पूर्व प्रशिक्षणार्थियों को सभी कार्यों का सैद्धान्तिक ज्ञान संस्थान में ही दे दिया जाय, जिससे व्यावहारिक अनुभव के समय महत्वपूर्ण बिन्दुओं को समझने में कठिनाई न हो।

- बहुकक्षा शिक्षण, जो प्राथमिक विद्यालयों की आवश्यक आवश्यकता है, का भी अभ्यास छात्राध्यापकों को करा दिया जाय जिससे वे विद्यालय की वस्तुस्थिति से अनभिज्ञ नहीं रहेंगे। बहुकक्षा शिक्षण के 5 पाठ प्रत्येक छात्राध्यापक के लिये अनिवार्य कर दिया जाय।

- पाठ संकेतों की संख्या 89 से घटाकर 60 कर दी जाय।

- छात्राध्यापकों में स्व-मूल्यांकन की विधा को विकसित करने के लिये एक प्रपत्र बनाया जाय। साथ ही अध्यापक द्वारा भी छात्राध्यापक का मूल्यांकन (रेटिंग स्केल पर) किया जाय।

- प्रत्येक छात्राध्यापक को दो समस्यात्मक बालकों की समस्या के निदान व उपचार पर रिपोर्ट तैयार करने का अनुभव कराया जाय।
- छात्राध्यापकों को ग्रामीण अनौपचारिक कक्षाओं, शिल्प केन्द्रों, लघु उद्योग केन्द्रों को भी दिखाया जाय।
- शहरी क्षेत्र में मन्द बुद्धि एवं विकलांग छात्रों के विद्यालय, एकल शिक्षक विद्यालय, अपराधी प्रवृत्ति के बालकों के न्यायालय आदि का भी भ्रमण कराया जाय।
- छात्राध्यापक विद्यालयों की वर्तमान परिस्थितियों एवं समस्याओं के अनुरूप शिक्षण विधि का विकास करें इसके लिये उन्हें प्रशिक्षण संस्थाओं मे नयी विधाओं से अवगत कराया जाय।
- प्रथम वर्ष में कक्षा 1 से 5 तक तथा द्वितीय वर्ष में 6 से 8 तक शिक्षण कार्य करे तथा इस स्तर पर उन विषयों का ही शिक्षण करें जो इण्टरमीडिएट या डिग्री के विषय रहे हों।
- छात्राध्यापक को प्राथमिक कक्षाओं के पाठ्यक्रम का सम्पूर्ण ज्ञान जिसमें कार्यानुभव, शारीरिक शिक्षा, कला एवं संगीत की शिक्षा का समावेश हो, पूरा करना अनिवार्य कर दिया जाय। कक्षाध्यापक के कार्यों एवं दायित्वों के निर्वाह का प्रशिक्षण भी प्रशिक्षण अवधि में दिया जाना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में छात्राध्यापकों द्वारा विभिन्न अनुभवों से सम्बन्धित आख्या भी तैयार कराई जाय।
- विद्यालयीय कार्यानुभव के कार्यक्रम का मूल्यांकन प्रशिक्षण संस्थान के शिक्षकों तथा कार्य स्थल के विद्यालय-अध्यापकों द्वारा किया जाय तथा इसे ही आन्तरिक मूल्यांकन का रूप दिया जाय।
- प्रशिक्षण प्राप्त करने के उपरान्त चूँकि तुरन्त सेवा प्राप्त कर लेना सम्भव नहीं होता है अतः प्रायः देखा जाता है कि प्रशिक्षित अध्यापक जीविकोपार्जन हेतु किसी अन्य व्यवसाय में लग जाते हैं जिससे प्रशिक्षण के मध्य अर्जित ज्ञान कों विस्मृत करने लगते हैं, अतः सेवा में लेने से पूर्व उन्हें 3 सप्ताह का पुनर्बोधात्मक प्रशिक्षण दिया जाय।

अन्त में मैं यह कहना चाहूँगी कि देश में शत प्रतिशत साक्षरता की परिकल्पना को साकार करने हेतु आधार स्तम्भ प्राथमिक शिक्षा पर अधिक से अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है, साथ ही इसके कर्णधार प्राथमिक शिक्षकों के प्रशिक्षण में कतिपय संशोधन एवं परिवर्तन वांछनीय हैं।

***

TEACHER EDUCATION : A PROSPECTIVE VIEW

Dr. Sarla Pandey
Reader & Dean
Faculty of Education
Kashi Vidyapeeth
Varanasi

The present system of teacher education in India has come under adverse criticism in recent years even though it has seldom been subjected to critical analysis as a seperate and important sector of education. Since no system of education can rise higher than the level of teachers, our whole system of education has continued to suffer because of lack of competent and professionally dedicated teachers.

Therefore if some sort of change is required in teacher education as the demand of 21st Century, teacher education instead of bifocal process it seemed as trifocal process where communication takes place amongst three important elements, i.e. teacher educater as communicator, pupil teacher as receiver as well as communicator and child as receiver. So teacher educator of today has to take very crucial steps to remodel teacher education strategies to meet the challenges of our future socities.

For meeting the challenges of future societies teacher education must be functional. The present teachers training programme of our country imparts some basic principles of theory and practice to our young teacher for the immediate task of classroom management. It has been recognised by the educationist that the initial courses of teacher preparation are not sufficient to meet the challanges of continuously changing society. What is needed is real professionalism which requires close relationship between theory and practice, Which demands changes in curriculum.

Curriculum of teacher education at secondary level should aim at induction and initiation for would be teachers. Tcacher education should be changed from teacher ducator centre to learner centred and thacher trainees centred. More emphasis hould be laid on tutoring system, individualized instruction, field work, practical and

community work so that it may become more realistic and sensitive to social value Student must learn information and manipulation of the data according to demanding need of society. Teachers have to adapt their pedagogy or teaching style according to teachnological changes, mere lecturing will not be helpful. He has to spent less time in lectures to the whole class and to become more skilled at small group interaction and monitoring the need of individual pupils.

The syllabus of teacher education must be skill based and competency based patterns of Gandhian basic education along with socially useful productive work should be incorporated in the syllabus. Implementation of micro teaching is important. Use of educational technologies, Computers, Hardwares and softwares must be enhanced. The whole syllabus should be bifurcated into theorecical foundation and practical. The theory of teacher education must include theoretical aspect of education in general and content cum methodology in speeial. Education in general should include sociological and philophical aspect of teacher education, Psychological foundation of education, Technological development of education, and current problems of education and development of Indian education.

Since whole curriculum is skill based, proper timing should be alloted for practice of different skills, which needs internship approch, is being discussed under following heads.

(a) Sessional works comprising of :

(i) Community work—one week

(ii) Participation in scouting and guiding programme—one week

(iii) Preparation of teaching aids.

(iv) Participation in debates on— once in a week.
Crucial education problems
Essay writing on special aspect of education.

(b) Skill practice comprising of

(i) Practice of different skills — 10 days
(ranging from 6 to 10 skills) — 80 days
By microteaching approach

(ii)	Teaching of 10 mini lessons after integration practice of different skills.	— 10 days
(iii)	Block teaching of 90 lessons supervised 100% and participating in school activities as teacher of the school.	— 20 days
(iv)	Survey of slum area or teaching in a nearby village school or identifying special children and arranging for remedial teaching	— one week
	Total of period	—60 days

In this way the duration of whole curriculum should be one year course having two months Complete Practical Programme.

Evaluation should be treated as Continuous evaluation process and should be based on 60% internal and 40% external. Mode of examination should be written and oral and performance based. Marks allocation should be 50% to theory and 50% to Practical. 50% Practical should be bifurcated to 45% for different work and 5% five for Code and conduct of pupil teachers.

In the end beside use of microteaching, modern technologies of education, we should not forget affective aspect of teacher education i.e. close relationship between University department training institution and school etc. which provide plateform for the discussion of future possibilities with references to global changes and also regain the concept of world's spritual and moral Guru. All efforts should be done which is the key point of all educational process.

***

PERSONALIZED TEACHER EDUCATION : AN INNOVATION

Dr. Chhaya Gupta
Dr. S. K. Tyagi
The Inotitute of Education
Devi Ahilya Vishwavidalaya
Indore

Teacher occupies an important place in our system of education. The strength of an educational system must largely depend upon the quality of its teachers. The pressent system of teacher education has been quite unsuccessful in creating an awareness among student teachers regarding the dynamic role of a future teacher. The image of a teacher implicitly conveyed through the curriculum is that of a disciplinarian master delivering static body of knowledge to captive students in the traditional set up i. e. the classroom. The fact that a future teacher has to be a "Motivator to learners in many creative, unconventional way, a good comunicator, efficient organiser of learning situation, and democratic leader", least emerges in the teaching transactions.

With a view to bring about radical changes in the system of teacher education and make it truly leaner centred, and personalized, an experiment was conceived in April, 1991 with the help of MIRAMBIKA, an innovative institution under the auspices of Shri Aurobindo Society, Delhi. The special features of the programme are :

FLEXIBLE TIME MANAGEMENT :

The planning of time is extremely flexible. Generally there is no centralized time blocks. Students in consultation with the teachers make decisions, regarding time management on weakly basis and not on semester basis. It is a joint venture. There are provisions to accommodate flash programmes/activities.

CONTENT SPECIFIC LEARNING :

It is more or less a zero lecture programme, Various modes of learning are as follows :—

SEMINAR MODE :

It consists of four phases. In the Preliminary, content is chosen by the students and orientation is done by the teacher. In the Learning Phase relevant books and materials are searched, studied, and notes and transperencies are prepared. In the Presentation Phase student present the content before the class. Lastly in the discussion Phase students are allowed to discuss the content amongst themselves i.e. undirected and later on it is again discussed under the supervision of teachers i.e. directed discussion.

ACTIVITY MODE :

To provide variety in learning modes, the actirty of learning and presentation is employed. The activity might be interviewing experts, conducting debate, making audio/video cassette survey, quiz, preparation of charts and models, preparing modifying some document, story telling, poem composition, drama, panel discussion etc. It consists of the following phases—

The first is the Designing phase in which students select appropriate activity and plan details of the activity. Second phase is Execution phase, in this execution of the activity is done individually and/or in groups. Then the activity is presented before the peers. Lastly undirected discussion followed by directed discussion takes place.

SUCCESSIVE DISCUSSION MODE

In seminar and Activity modes of learning, opportunities to make discussion are limited. Further more these modes are individualistic in nature; though activities may sometimes be undertaken in groups. With these considerations in view the above modes are supplemented by successive discussion mode which is more group oriented. In the preliminary phase of this mode, selection of some content is done by every individual and orientation is given by the teacher. In the Learning phase relevant books and materials are searched, studied and notes are prepared by the students. Then in the Discussion first of all content is discussed in pairs, then in small groups and then groups are rotated for detailed discussion. In the Presentation

Phase, Mode of presentation is decided by each group and then presented simultaneously. In the end undirected and directed discussion take place.

EVALUATION :

Adoption of diverse modes of evaluating the learning performance of the individuals and about 50% weightage to assessment by the peers in sessionals are a few outstan ding features of the evaluative process. In the final assessessment situational and problematic questions requiring reflective and application skills are given. Students are allowed to express their views in different manners viz, verbal, drawing, cartoons, dialogue, poetry, slogen etc. They are also given freedom to select either traditional questions or innovative questions.

PERSONALIZING ACTIVITIES :

In order to personalize education, students are involved in activities like dusting and keeping classroom in order, practicing silence before days engagements or prayer/ group songs, keeping music corner, managing seasonal course library, dinning collectively, displaying student's work, exhibiting family photographs and miniprofile, arranging meetings with seniors, offering opportunities to speak about some important event, celebrating days etc.

LEARNER'S FREEDOM :

The students have freedom of choosing what they want to study, of course, out of the prescribed course and how long they want to learn. They are allowed to learn wherever they like to learn but within teacher's accessibility. They design activities according to their taste and abilities and adopt different modes of presentation according to their disposition i. e., Seminar, discussion, debate, drama, audio-video, charts, poster, models, certoons Quiz etc. They are allowed to express their answers in the examination, the way they like and not only in the traditional manner i. e. written mode.

ROLE OF TEACHER :

Teacher has a crucial role to play in orienting students to Activity learning. Teacher helps and quides students to locate and use of learing resources, assist with regard to study, write up mode of presentation, in designing of the appropriate activity for a given content. Presence of teacher is importent in monitoring the execution of the activies, Evaluating the learner performance and entire programme for its modification. Besides this teacher is mainly responsible for :

* Maintaining level of interest and participation of activities in the group,

* Enhancing a sense of belongingness to the group as a whole.
* Coordinating among different groups.
* Understanding the unique personality of the learner and direction of his/her growth.

FIELD LINKAGES :

Continuous opportuities are provided to the students for direct learning in the field by teaching students in small groups, organising important school functions/day. Students are managing play ground, library, laboratory etc. and developing resource centre. They are participating in the routine tasks and undertake developmental school projects. They are given opportunity to help in the organisation of children science congress.

PERCEPTIONS AND FEEDBACK :

Feedback is accepted from students, collegues, director of the institution, Visitors (eminent academicians) etc.

STUDENTS CONCERNED .

The group unanimously appreciated the innovative scheme i. e. B. Ed. Activity. The following comments summarizes their views :

* "It helps me to become more confidant and competent".
* "It provides an opportunity to communicate with the teacher without any fear/hesitation. I feel at home with the group".
* "This programme develops the ability to express our views frankly in front of an audience. It develops confidence".
* "Motivates us to learn more and more".
* "Group interactions help us in knowing each other's views and enriching our experiences".
* "Good variety of discussion of peers in groups".
* "Different modes of presentation bring easy and lasting learning".
* "Grouping is always new, very interesting and learnable".
* Through peer evaluation we learn to judge others".
* "Easy learning, tremendeous exchange of ideas".

Almost all the students liked the idea of involving each learner through discussion in pairs, small groups and then to whole group.

Some negative observations are :

* "Heavy work load, I always feel very tense".
* "It consumes lot of time and energies".
* "we are known to other students (traditional B. Ed.) but we have little time to interact with them".

REFERENCES :

1. ANAND, C. L. ET AL. : The Teacher and Edueation in Emerging Indian Society. NCERT, New Delhi, 1993.
2. NCERT : Teacher Education Curriculum—A Frame work, NCERT, New Delhi, 1977.
3. Towards an Enlightened and Humane Society—A perspective paper on Education. Committee for Review of NPE 1986, New Delhi, 1990.
4. Towards an Enlightened and Humane Society—Report of the Committee for review of NPE 1986 New Delhi, 1990.
5. Ordinance 31 of Statutes and Ordinances of Devi Ahilya Vishwavidyalaya, Indore.
6. NEERT : Secondary Teacher Education Curriculum, Guidelines and Syllabi, NCERT, New Delhi, 1991.
7. NCERT : Elementary Teacher Education Curriculum Guidelines and syllabi, NCERT, New Delhi 1991.
8. Learning with projects, A Monograph MIRAMBIKA, Shri Aurobindo Society, New Delhi.
9. HENRY, J. : Developing Human potential Experientially Institute of Educational Teachnology, The Open University, Milton Keynes MK 76 AA, 1990.

***

TEACHERS' TRAINING COLLEGES AND PRACTISING SCHOOLS : WAYS TO BRIDGE THE GAP

Dr. V. K. Rai, Lecturer,
Deptt. of Education
S. D. J. P. G. College
Chandeswar, Azamgarh, U. P.

The professional part of the teachers' education generally consists of two parts : the theoretical background and the practical side. Theory Courses provide educational engineering while practical teaching is meant merely to train up the educational technicians. It is the practical side in which a student teacher is given actual experience of the tricks of his trade.

Teacher education is undoubtedly considered as the weakest link and is treated as an educational cinderella in the panorma of our educational system. It is beset with several problems. While there is no doubt that the entire programme needs to be looked up but the practice teaching is one area in which the reform will yield the highest dividend. Needless to mention that the success of student teaching programme apart form other things depends upon interaction and sound relationship between colleges of education and the practising schools. This is why it has become a cooperative enterprise in which the colleges and schools share responsibilities.

If the Cooperating schools play their roles and give their Cooperation conscientiously, the following advantages would be available.

(i) It would provide an opportunity to the student teachers to have their first hand experience of working with Children of the schools

(ii) It will enable the student teachers to relate theory to actual practice teaching experiences.

(iii) Close Contact with classroom instructional practices would pave the way for making necessary changes in the theory course.

(iv) It will provide a solid base to measure the student's fitness or aptitude for teaching.

(v) It will acquaint teachers with modern trends in theory and practice.

(vi) It will enable the staff members of the College to be familiar with the practical problems faced by teachers in schools.

(vii) It will facilitate the process of establishing good human relationship with the people of the teaching profession.

But it is disheartening to mention that in actual practice studies conducted in this context show that the attitude of practising school staff is generally not positive and encouraging. Cooperation between the colleges and.schools is somewhat superficial. Wily and Maddison (1971) admit that "the evidence to the select committee demonstrates that there is a dangerous gap between the Colleges of education and the schools." Generally, the practising schools instead of providing cooperation create more difficulties during student teaching. It would be proper to study the extent of non-cooperation and problems created by the practising schhools. Describing the adverse effect of indifference on the part of practising schools D'Souza and chatterjee (1956) opine :

"The old antagonism is often replaced by an indifference which is even more Chilling and eneravating than open hostility."

Problems created by Practising Schools

Following are the some problems created by the practising schools :

(i) Some schools do not give permission for arranging practical teaching at all.

(ii) They insist that the practice teaching should be finished within a short duration of time.

(iii) They are not willing to change the time-table and split the classes when required.

(iv) The principals and teachers of the practising schools possess grumbling and grudging attitue towards student teachers.

(v) The teachers do not evince keen interests in guiding student teachers.

(vi) Some schools lack adequate accommodation, furniture and equipment. The subject teachers donot allow the students teachers to utilize various teaching aids and devices which one awailable.in the school.

(vii) The school authorities want to extract undue concesion from the college for their contribution during student teaching. It may range from appointment of teacher educaters to admission and good marks in internal assessment to their candidate.

(viii) In the work of poor school results the principals and teachers protect themselves by throwing the entire responsibilities upon student teachers. This results in tarnishing the image of the colleges in the eyes of the public and the management of the school.

(ix) The schools encourage only traditional type of teaching. Thus creativity and originality are supressed.

(x) There is a tendency on the part of pupils to create unnecessary troubles which make it difficult for the student teachers to proceed and teach in an effective way.

Reasons for lack of cooperation from schools :

It would be proper to study the possible reasons that induce the cooperating schools to adopt such unhelpful stance during student teaching. Some of the prominent ones are following :—

(i) The practising schools do not get due recognition and appreciation for their role in teacher preparation.

(ii) Some student teachers donot go well prepared in the class and present inferior quality of teaching. Their behaviour and adjustment to the new environment leaves much to be desired. "The sad part of the study is that the student just does not realise the chaos he creates" (Cohen & Garner, 1965, p. 90).

(iii) The teachers of practising schools feel exasperated due to being excluded from effective participation in student teaching programme.

(iv) The present relationship between the colleges and schools is marked by one in which the colleges play a superior role and the school staff feels that they have to work in subordination.

(v) The unprecedented increase in the number of trainees and training institutions has made schools and colleges more unsavoury.

(vi) According to cope (1969) "Much unfortunate snipping between schools and colleges if due to misunderstanding of the college course and a failure to recognise joint responsibility" (Cope, 1969,/p. 25).

(vii) Schools are suspectical about the teaching ability of student teachers. They view student as a waste of time and treat it as a farce. They believe that to allow student teaching is to allow school children 'guinea pigs'; in the experiments conducted by the colleges, This would impair their school results, Price (1964) affirms,

So long as schools are preparing pupils for such examinations, parents and teachers alike are bound to look with suspicion upon experiments which might get their children well back in the race of preferment (Price, 1964 p. 39).

(viii) There are no well defined responsibilities to be shared between colleges and schools.

(ix) According to the report of the Ramamurti Committee demonstraton or model schools are not rendering the control of colleges of Education.

Pointing out the actual position of existing relationship between colleges and schools, Owens (1970) declares :

From the schools point of view, students are frequently little more than a hindrance, they come in at the college's inconvenience, that is often considerable feeling in schools about the irrelevance of college work and the college is put in a curiously predatory and casual relationship with the schools, so that it is difficult for lasting relationship to form. From the college point of view, students under present system gain little confidence in themselves. (ownes, 1970, p. 63).

All these accounts indicate that there are some obstacles to a close and working artievlation between colleges and schools. For ensuring cooperation from practising schools, the following measures may be useful :

(a) Administrative Reforms :

At the administrative level, the schools should be instructed to extend wholehearted cooperation to the training colleges.

(b) Academic Reforms :

Every effort should be made to solve the fundamental problem of relating theory to practice.

(c) Organization of Meets :

The training colleges should convene frequent meetings of the practising school teachers to discuss the problems of student teaching and ways to find out their solution. The principal and the staff members of the training colleges should pay occasional visits to the schools to ensure the relationship warm and friendly.

(d) National Assistance From Training Colleges to Practising Schools :

Maps, charts, pictures, roll-up boards and other aids prepared by the student teachers should be given to the practising schools. If possible scholarships and book aids should be provided to the bright students of the schools.

(e) Organizing Co-curricular Activities :

Competition in Poem recitation, essay writing, story writing, sports, drama and music etc., should be organised. Training colleges and schools should jointly participate in cultural programmes.

(f) Additional Academic Help :

Teacher educators and student teachers should help the practising schools by conducting teaching if they face the problem of the shortage of teachers. Besides, the teachers should be allowed to use the training college library and other available facilities. Extra coaching of the weaker students would develop goodwill and understanding.

(g) Personal obligations to the Head of the School :

A few seats for admission of the B. Ed. Course should be reserved for the candidates recommended by the school heads. Besides, the principal and the senior staff members should be given the right to evaluate the student teachers.

(h) Behaviour of Teacher Educators :

The teacher educator should behave as a friend of the teachers of the schools and not as a superior person who deserves special treatment. The teacher educator should not forget that the training is a joint responsibility between the schools as the cousumer aud the colleges as a producer of teachers.

These are some nostrums which will go a long way in ensuring harmonious relationship and bridging the gap between the colleges and schools.

References :

Cohen, Alan and Noman, Gainer. A Students' Guide to Teaching Practice, London : University of London Press Ltd., 1965.

Cope, E. "Students and school Practice" Education for teachiug, 80 Autumn 1969, pp. 25-35.

D' Souz, Attin and J. N. Chatterji, Training for Teaching in India and England Bombay : Orient Longman, 1956.

Price, G "The Crisis in school Practice", Education for teachiug, 85, November 1964, pp. 35-40.

Owens, Graham "A New Pattern of School College Relationship,". Education for Teaching 82, Summer, 1970, pp. 63-65.

Evans, A. "College and School Relationship, in the training of teachers and Factual Survey. Stanely Hommett. London : University of London Press Ltd, 1971.

Report of the Committee for Review of National Policy on Education, New Delhi, 1990.

संगोष्ठी का कार्यक्रम

(1) उद्घाटन सत्र	पृष्ठभूमि पत्रक की प्रस्तुति	21-9-92	11 बजे से 1 बजे
(2) द्वितीय सत्र	प्रारम्भिक स्तरीय शिक्षक-शिक्षा (सेवापूर्व तथा सेवारत) की वर्तमान स्थिति पर विचार पत्रकों की प्रस्तुति तथा विचार-विमर्श	21-9-92	2 बजे से 5 बजे
(3) तृतीय सत्र	माध्यमिक स्तरीय शिक्षक-शिक्षा (सेवापूर्व तथा सेवारत) की वर्तमान स्थिति पर विचार पत्रकों की प्रस्तुति तथा विचार-विमर्श	22-9-92	10 बजे से 1 बजे
(4) चतुर्थ सत्र	शिक्षक शिक्षा के स्तरोन्नयन के आयाम तथा सम्भावनाएँ विषय पर पत्रकों की प्रस्तुति तथा विचार-विमर्श	22-9-92	2 बजे से 5 बजे
(5) पंचम सत्र	विचार-विमर्श तथा संस्तुतियों का अन्तिम रूप से निर्धारण	23-9-92	10 बजे से 1 बजे
(6) षष्ट सत्र	संस्तुतियों तथा निष्कर्षों की प्रस्तुति एवं समापन	23-9-92	3 बजे से 5 बजे

संगोष्ठी में सम्मिलित शिक्षाविद् एवं प्राध्यापक गण

(क) विशिष्ट प्रतिभागी :

(1) श्री हरि प्रसाद पाण्डेय — निदेशक, राज्य शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, उ० प्र०
(2) डॉ. एस. एन. उपाध्याय — भूतपूर्व यूनेस्को विशेषज्ञ, 2, पन्नालाल रोड, इलाहाबाद
(3) डॉ. आर. एस. पाण्डेय — अध्यक्ष, शिक्षा-संकाय, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इला० उ० प्र०
(4) श्री आर. एन. शर्मा — निदेशक, पत्राचार शिक्षा संस्थान, उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद
(5) श्री ए. एन. तिवारी — भूतपूर्व प्राचार्य, राजकीय केन्द्रीय अध्यापन विज्ञान संस्थान, इला०
(6) श्री नर्बदा प्रसाद — भूतपूर्व प्राचार्य, के. पी. ट्रेनिंग कालेज, इलाहाबाद, उ० प्र०
(7) श्री राजपति तिवारी — निदेशक, विज्ञान और गणित शिक्षा विभाग, इलाहाबाद
(8) श्री गौरी शंकर मिश्र — प्राचार्य, प्रारम्भिक शिक्षा विभाग, इलाहाबाद, उ० प्र०
(9) श्री कृपाशंकर राय — प्राचार्य, आंग्ल भाषा तथा विदेशी भाषा विभाग, इला०, उ० प्र०
(10) श्री बी. आर. अग्निहोत्री — शि. प्र. अधिकारी, श्रव्यदृश्य और शिक्षा प्रसार विभाग, उ.प्र., इला०

(ख) एन. सी. ई. आर. टी. / क्षेत्रीय शिक्षा महाविद्यालय :

(11) प्रो. एस. के. गुप्त — क्षेत्रीय सलाहकार, एन. सी. ई. आर. टी., नयी दिल्ली
(12) डॉ. एस. सी. जैन — रीडर, रीजनल कालेज आफ एजूकेशन, अजमेर, राज०

(ग) विश्वविद्यालय / महाविद्यालय

(13) डॉ. विद्यासागर मिश्र — अध्यक्ष, शिक्षा संकाय, गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर
(14) डॉ. हरिवंश सिंह — अध्यक्ष, शिक्षा विभाग, एम. एम. पोस्ट ग्रेजुएट कालेज, कालाकांकर प्रतापगढ़
(15) डॉ. एम. सी. शर्मा — अध्यक्ष, शिक्षा विभाग, राजा बलवन्त सिंह कालेज, आगरा
(16) डॉ.(श्रीमती)सरला पाण्डेय— अध्यक्ष, शिक्षा संकाय, काशी विद्यापीठ, वाराणसी
(17) डॉ. (कु०) छाया गुप्ता — प्रवक्ता, शिक्षा संस्थान, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर
(18) डॉ. डी. एस. श्रीवास्तव — अध्यक्ष, शिक्षा विभाग, अँतर्रा पो० ग्रे० कालेज, अतर्रा, बाँदा
(19) डॉ. रवि गोपाल उपाध्याय— प्रवक्ता, बी. एड. विभाग, राजकीय रजा स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रामपुर, उ० प्र०
(20) डॉ. सियाराम यादव — प्रवक्ता, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चमोली, उ० प्र०
(21) डॉ. विनोद कुमार राय — अध्यक्ष, शिक्षा विभाग, एस. डी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चंडेसर आजमगढ़, उ० प्र०

(घ) एल० टी० प्रशि० महाविद्यालय / जि० शि० प्र० संस्थान / अन्य

(22) श्री श्याम नारायण राय — प्राचार्य, मानविकी और सामाजिक विज्ञान विभाग, (राजकीय केन्द्रीय अध्यापन विज्ञान संस्थान) इलाहाबाद, उ० प्र०

(23) श्री राज मोहन श्रीवास्तव — प्राचार्य, के. पी. ट्रेनिंग कालेज, इलाहाबाद, उ० प्र०

(24) डॉ. श्रीमती प्रेमलता सिंह — प्राचार्या, राजकीय गृह विज्ञान महिला प्रशि० महाविद्यालय, इला०

(25) श्रीमती प्रतिभा मिश्र — प्राचार्या, राजकीय महिला प्रशिक्षण महाविद्यालय, इला०, उ० प्र०

(26) श्री कमला प्रसाद शुक्ल — प्राचार्य, डी. ए. वी. ट्रेनिंग कालेज, कानपुर, उ० प्र०

(27) श्री यतीन्द्र नाथ त्रिपाठी — प्राचार्य, किसान प्रशिक्षण महाविद्यालय, बस्ती, उ० प्र०

(28) श्री सुदामा दुबे — प्र० प्राचार्य, सकलडीहा एल. टी. ट्रेनिंग कालेज, वाराणसी, उ० प्र०

(29) श्री पी. बी. विश्वकर्मा — शोध प्राध्यापक, राजकीय ट्रेनिंग कालेज, वाराणसी, उ० प्र०

(30) श्रीमती किरनबाला पाण्डेय — प्रधानाचार्या, राजकीय शिशु प्रशिक्षण महाविद्यालय, इला०, उ०प्र०

(31) श्रीमती वी. दीक्षित — प्रवक्ता, राजकीय शिशु प्रशिक्षण महाविद्यालय, इला०, उ० प्र०

(32) श्रीमती शान्ति श्रीवास्तव — प्रवक्ता, राजकीय महिला प्रशिक्षण महाविद्यालय, इला०, उ०प्र०

(33) श्री राजेश्वर मिश्र — प्राध्यापक, मानविकी और सामाजिक विज्ञान विभाग, (राजकीय केन्द्रीय अध्यापन विज्ञान संस्थान) इला०, उ० प्र०

(34) श्री दुर्गा प्रसाद द्विवेदी — प्रवक्ता, ,, ,,

(35) श्री इन्द्रपाल यादव — प्रवक्ता, ,, ,,

(36) श्रीमती पुष्पा मानस — प्राचार्या, जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान, बीसलपुर, पीलीभीत

(37) श्री बी. के. सक्सेना — प्राचार्य, जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान, उन्नाव, उ० प्र०

(38) श्री वासुदेव यादव — प्राचार्य, जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान, सारनाथ, वाराणसी

(39) श्री संजय मोहन — प्राचार्य, जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान, रायबरेली, उ० प्र०

(40) श्रीमती सुषमा जोशी — प्रवक्ता, जिला शिक्षा और प्रशिक्षण संस्थान, लखनऊ, उ० प्र०

***